छठी शताब्दी ई.पू. में भारत की राजनैतिक दशा

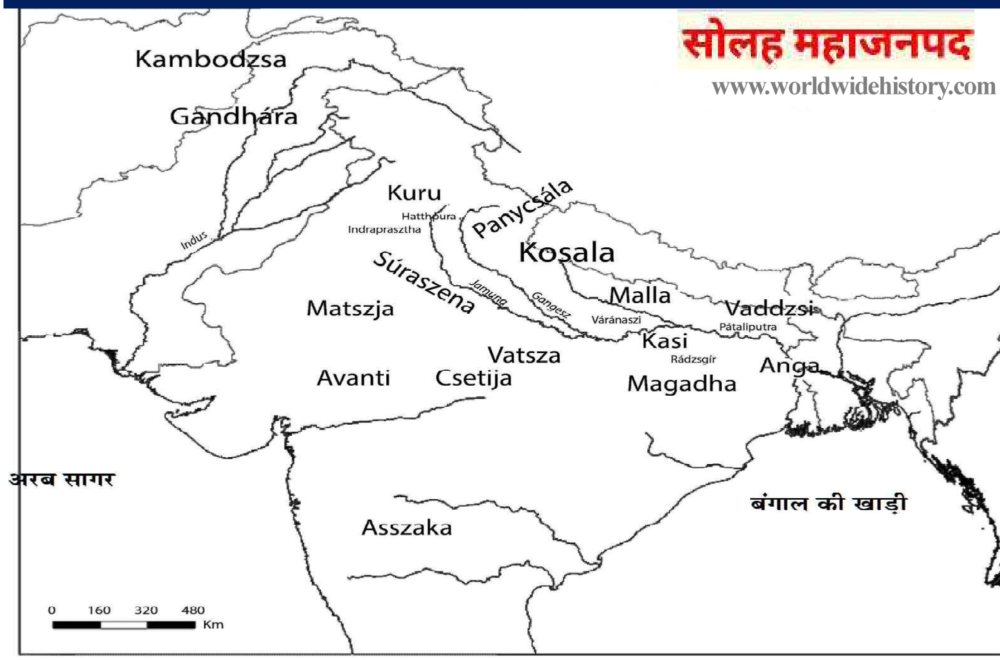

डॉ. विश्वनाथ वर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग
हरिश्चंद्र स्नातकोत्तर महाविद्यालय वाराणसी (उ.प्र.)
drvn.verma@gmail.com
Website : www.worldwidehistory.com

छठी शताब्दी ई.पू. में भारत की राजनैतिक दशा

आरंभिक भारतीय इतिहास में छठी शताब्दी ई.पू. को एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तनकारी काल माना जाता है। यह काल प्राय: आरंभिक राज्यों, नगरों, लोहे के बढ़ते प्रयोग और सिक्कों के विकास के साथ जुड़ा हुआ है। इसी काल में बौद्ध तथा जैन सहित विभिन्न दार्शनिक विचारधाराओं का विकास हुआ। इस काल तक पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा पश्चिमी बिहार में लोहे का व्यापक रूप से प्रयोग किया जाने लगा था। लौह-तकनीक और मुद्राओं के प्रयोग से भौतिक जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन आया और स्थायी जीवन की प्रवृत्ति और अधिक सुदृढ़ हुई। गंगाघाटी तथा विंध्य क्षेत्र में गाँव-समूहों के स्थान पर नगरों के आर्विभाव की घटना इसी शताब्दी की देन है। वस्तुतः कृषि, उद्योग, व्यापार, वाणिज्य आदि के विकास ने प्राचीन जनजातीय व्यवस्था को जर्जर बना दिया तथा छोटे-छोटे जनों का स्थान जनपदों ने ले लिया। उत्तर वैदिक काल में राज्यों या प्रशासनिक इकाइयों के रूप में जनपदों का उल्लेख मिलता है। ग्रामीण जीवन से नागरिक जीवन की ओर खिसकाव के कारण ई.पू. छठी सदी तक आते-आते यही जनपद महाजनपदों के रूप में विकसित हो गये। वासुदेवशरण अग्रवाल ने ई.पू. 1000 से लेकर ई.पू. 500 तक के काल को जनपद-युग की संज्ञा प्रदान की है।

छठी शताब्दी ई.पू. के आरंभ में उत्तर भारत में सार्वभौम सत्ता का अभाव था और संपूर्ण प्रदेश अनेक छोटी-छोटी राजनीतिक इकाइयों में विभक्त था। इस काल की राजनीतिक दशा का स्पष्ट विवरण किसी ग्रंथ में नहीं मिलता है, किंतु बौद्ध और जैन धर्म के कुछ प्रारंभिक ग्रंथों में कुल सोलह महाजनपदों का नामोल्लेख हुआ है। इनका नामकरण अलग-अलग ग्रंथों में भिन्न-भिन्न मिलता है जिसका कारण संभवत: भिन्न-भिन्न समय पर होने वाला राजनीतिक परिवर्तन और सूची-निर्माताओं का भौगोलिक ज्ञान है। वैयाकरण पाणिनि ने 22 महाजनपदों का उल्लेख किया है, जिनमें से तीन- मगध, कोसल तथा वत्स को महत्त्वपूर्ण बताया है।

सोलह महाजनपद

भारत के सोलह महाजनपदों का उल्लेख ई.पू. छठी शताब्दी से भी पहले का है। बौद्ध ग्रंथ अंगुत्तर निकाय में 16 महाजनपदों का उल्लेख मिलता है, जिससे लगता है कि बुद्ध के उदय के कुछ समय पहले समस्त उत्तरी भारत सोलह बड़े राज्यों में विभक्त था। अंगुत्तर निकाय की सूची के सोलह महाजनपदों के नाम इस प्रकार हैं- काशी, कोशल, अंग, मगध, वज्जि, मल्ल, चेदि, वत्स, कुरु, पांचाल, मत्स्य, शूरसेन, अश्मक, अवंति, गंधार और कंबोज। जनवसभसुत्त में केवल बारह राज्यों के ही नाम मिलते हैं। चुल्लनिद्देश में सोलह महाजनपदों की सूची में कलिंग को जोड़ दिया गया है तथा गंधार के स्थान पर योन का उल्लेख है। महावस्तु में गंधार और कंबोज के स्थान पर क्रमशः शिवि तथा दशार्ण का उल्लेख मिलता है। किंतु इन समस्त सूचियों में अंगुत्तरनिकाय की सूची ही प्रमाणिक मानी जाती है।

जैन ग्रंथ भगवतीसूत्र में भी महाजनपदों की एक सूची प्राप्त होती है, किंतु इस सूची में नाम कुछ भिन्न हैं, जैसे- अंग, बंग, मगह (मगध), मलय, मालव, अच्छ, वच्छ (वत्स), कोच्छ, पाढ्य, लाढ़,

वज्जि, मोलि (मल्ल), काशी, कोशल, अवध और सम्भुत्तर। अंगुत्तर निकाय और भगवतीसूत्र की सूचियों की तुलना करने पर पता चलता है कि कुछ राज्यों के नाम दोनों सूचियों में हैं, जैसे- अंग, मगध, काशी, वत्स, वज्जि आदि। हेमचंद्र रायचौधरी का अनुमान है कि भगवतीसूत्र में जिन राज्यों का उल्लेख है, वे सुदूर-पूर्व और सुदूर-दक्षिण भारत की राजनैतिक स्थिति के सूचक हैं। इन महाजनपदों के विस्तार से लगता है कि वे अंगुत्तरनिकाय में उल्लिखित राज्यों के बाद के हैं। अंगुत्तरनिकाय के सोलह महाजनपद बुद्ध के पूर्व विद्यमान थे क्योंकि गौतम बुद्ध के समय काशी का राज्य कोशल में और अंग का राज्य मगध में सम्मिलित कर लिया गया था। संभवत: अश्मक भी अवंति द्वारा विजित कर लिया गया था।

(चित्र-1: छठी शताब्दी ईसापूर्व के सोलह महाजनपदों की स्थिति)

महाजनपद काल में जिन सोलह महाजनपदों का उल्लेख मिलता है, उनमें दो प्रकार की शासन प्रणाली प्रचलित थी। अंग, मगध, काशी, कोशल, चेदि, वत्स, कुरु, पांचाल, मत्स्य, शूरसेन, अश्मक, अवंति, गंधार, कंबोज जैसे महाजनपदों में राजतंत्रीय व्यवस्था थी, तो वज्जि एवं मल्ल जैसे कुछ महाजनपद गण या संघ के अधीन थे। राजतंत्रीय महाजनपदों का शासन राजा द्वारा ही संचालित होता था, परन्तु गण और संघ के राज्यों में विशिष्ट लोगों का एक समूह शासन करता था। इस समूह का प्रत्येक व्यक्ति 'राजा' कहलाता था।

काशी

यह महाजनपद प्राचीन काल में वर्तमान वाराणसी एवं उसके समीपवर्ती क्षेत्रों में फैला हुआ था। इसकी राजधानी वाराणसी थी जो उत्तर में वरुणा और दक्षिण में असी नदियों से घिरी हुई थी। इसकी

पुष्टि पाँचवीं शताब्दी में भारत आनेवाले चीनी यात्राी फाह्यान के यात्रा विवरण से भी होती है। ब्राह्मण, जैन तथा बौद्ध साहित्य में काशी का उल्लेख मिलता है। वायु, ब्रह्मांड, मत्स्य, मारकंडेय तथा पद्म पुराणों में काशी की गणना मध्यदेशीय जनपदों में की गई है। पुराणों के अनुसार काशी को बसानेवाले पुरुरवा के वंशज राजा 'काश' थे, इसलिए उनके वंशज 'काशि' कहलाये। संभवतः यही कारण है कि इस जनपद का नाम 'काशी' पड़ गया। कहते हैं कि काशी भगवान् शंकर के त्रिशूल पर स्थित है, इसलिए इसे पृथ्वी से बाहर का क्षेत्र माना जाता है। मान्यता है कि प्रलय के समय संपूर्ण पृथ्वी का विनाश हो जाने पर भी शंकर के त्रिशूल पर स्थित होने के कारण काशी नगरी सुरक्षित रहती है। जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ के पिता अश्वसेन यहाँ के प्रसिद्ध राजाओं में से एक थे। सोननंदजातक से ज्ञात होता है कि इस राज्य का विस्तार तीन सौ ली था और यह महान्, समृद्धशाली तथा साधन संपन्न राज्य था। बौद्ध ग्रंथों से पता चलता है कि काशी तथा कोशल के बीच लम्बे समय तक संघर्ष चला और एक समय काशी के राजा ब्रह्मदत्त ने कोशल को जीत लिया था। किंतु अंत में कोशल नरेश कंस ने काशी को जीत कर अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया। वाराणसी का महत्त्व नदी तट पर स्थित होने तथा उत्पादनों के कारण भी था। हेमचंद्र रायचौधरी ने वाराणसी की तुलना प्राचीन बेबीलोन तथा मध्यकालीन रोम से किया है।

कोशल

अंगुत्तरनिकाय के अनुसार बुद्धकाल से पहले कोशल की गणना उत्तर भारत के प्रमुख महाजनपदों में होती थी जिसकी राजधानी अयोध्या व साकेत थी। यह जनपद सरयू (गंगा नदी की सहायक नदी) के तटवर्ती प्रदेश में बसा हुआ था जिसमें उत्तर प्रदेश के फैजाबाद, अंबेडकरनगर, गोंडा, बहराइच एवं जौनपुर के कुछ क्षेत्र शामिल थे। उत्तर में नेपाल से लेकर दक्षिण में सई नदी (स्यंदिका) तथा पश्चिम में पांचाल से लेकर पूरब में गंडक नदी तक यह महाजनपद प्रसरित था। पालि ग्रंथों में इसे 'सुंदरिका' नाम से उल्लिखित किया गया है। इसके दक्षिण-पूर्व काशी जनपद विद्यमान था। अयोध्या, साकेत और श्रावस्ती इस महाजनपद के मुख्य नगर थे। अयोध्या को कोशल की प्राचीनतम् राजधानी होने का श्रेय प्राप्त है। सरयू के किनारे बसी हुई एक बस्ती का उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है, जो कालांतर में अयोध्या के रूप में विकसित हो गई। साकेत इसकी दूसरी राजधानी थी। बुद्धकालीन छः महानगरों में साकेत भी एक था। ब्राह्मण तथा जैन ग्रंथों में अयोध्या तथा साकेत का तादात्म्य कर दिया गया है, किंतु बौद्ध ग्रंथों में दोनों को अलग-अलग बताया गया है। रिज डेविड्स के अनुसार अयोध्या और साकेत दोनों एक ही नगर के दो भाग थे।

ई.पू. छठी शताब्दी में कोशल की राजधानी श्रावस्ती में थी जिसके भग्नावशेष गोंडा के समीप सहेत-महेत से पाये गये हैं। बुद्ध के समय में श्रावस्ती की गणना भी छः महानगरों में की जाती थी। जातकों में कोशल के एक अन्य नगर सेतव्या का भी उल्लेख है। इस समय विदेह और कोसल की सीमा पर सदानीरा (गंडक) नदी बहती थी। महावग्ग जातक में काशिराज ब्रह्मदत्त द्वारा कोशल पर आक्रमण की चर्चा मिलती है। लगता है कि ब्रह्मदत्त के समय में कोशल की स्थिति अच्छी नहीं थी, किंतु कालांतर में इसकी शक्ति बढ़ी और इसने काशी पर अधिकार कर लिया। इसका श्रेय कोशल नरेश कंस को दिया जाता है। बुद्ध के पूर्व कोशल का शासक महाकोशल था। उसने अपनी पुत्री महाकोशला या कोशलदेवी का विवाह मगध-नरेश बिंबिसार के साथ किया था। काशी का राज्य, जो इस समय कोशल के अंतर्गत था, राजकुमारी को दहेज में उसकी प्रसाधन-सामग्री के व्यय के लिए दिया गया था। बुद्ध का समकालीन कोशल का राजा प्रसेनजित् था। छठी और पाँचवी शती ई.पू. में कोशल मगध के समान ही शक्तिशाली

राज्य था, किंतु धीरे-धीरे मगध का महत्त्व बढ़ता गया और मौर्य-साम्राज्य की स्थापना के साथ कोशल मगध-साम्राज्य कोएक अंग बन गया। इसके पश्चात् इतिहास में कोशल की जनपद के रूप में अधिक महत्ता नहीं दिखाई देती, यद्यपि साहित्य में इसका नाम गुप्तकाल तक प्रचलित रहा।

अंग

प्राचीन भारत के अंग महाजनपद में आधुनिक भागलपुर, मुंगेर और उससे लगे हुए बिहार और बंगाल के क्षेत्र सम्मिलित थे। रामायण में अंग की स्थापना का श्रेय अनंग को दिया गया है जो त्रिशूलपाणि से बचने के लिए इस क्षेत्र में भागकर स्वयं अनंग हुए थे। महाभारत तथा मत्स्य पुराण में इसकी स्थापना का श्रेय अंग नामक राजा को दिया गया है। इस महाजनपद की राजधानी चंपा नगरी, चंपा नदी के तट पर स्थित थी। उदय नारायन राय के अनुसार चंपा नामकरण का आधार चंपक वृक्षों की बहुलता थी। किंतु संभवतः चंपा नदी के तट पर स्थित होने के कारण ही उसे यह नाम मिला था। इसका सर्वप्रथम उल्लेख अथर्ववेद में मिलता है। महाभारत तथा पुराणों में चंपा का प्राचीन नाम 'मालिनी' प्राप्त होता है। दीघनिकाय से ज्ञात होता है कि चंपा नगर की योजना प्रसिद्ध वास्तुकार महागोविंद ने बनाई थी। प्राचीन काल में यह नगर वैभव और व्यापार-वाणिज्य का प्रमुख केंद्र था। बुद्धकाल में चंपा की गणना छः प्रसिद्ध नगरों में की गई है। महापरिनिर्वाणसूत्र के अनुसार चंपा के अलावा पाँच अन्य महानगर राजगृह, श्रावस्ती, साकेत, कोशांबी तथा वाराणसी थे।

विधुरपंडित जातक के अनुसार राजगृह अंग राज्य का नगर था। इससे लगता है कि किसी समय मगध अंग जनपद में ही सम्मिलित था। मगध का पड़ोसी महाजनपद होने के कारण अंग तथा मगध के बीच दीर्घकाल तक आपसी प्रतिद्वंद्विता चलती रही। प्रारंभ में इस जनपद के राजा ब्रह्मदत्त ने मगध के राजा भट्टिय को पराजित कर मगध के कुछ क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया था, किंतु कालांतर में इसकी शक्ति क्षीण हो गई और यह महाजनपद मगध में मिला लिया गया।

मगध

प्राचीन भारत के सोलह महाजनपदों में मगध सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण महाजनपद था। यह महाजनपद बिहार प्रांत के पटना, गया और शाहाबाद के क्षेत्रों में फैला हुआ था। मगध महाजनपद की सीमा उत्तर में गंगा से दक्षिण में विंध्य पर्वत तक, पूर्व में चंपा और पश्चिम में सोन नदी तक विस्तृत थी। बौद्ध काल तथा परवर्ती काल में उत्तरी भारत का सबसे अधिक शक्तिशाली जनपद मगध ही था। वस्तुतः मगध प्राचीन काल से ही राजनीतिक उत्थान, पतन एवं सामाजिक-धार्मिक जागृति का केंद्र-बिंदु रहा है। मगध की प्राचीन राजधानी राजगृह (गिरिव्रज) थी, जो पाँच पहाड़ियों से घिरी थी। महाभारत में गिरिव्रज को परिवृत्त करने वाले पर्वतों में वैहार, वराह, वृषभ, ऋषिगिरि तथा चैत्यक नाम मिलता है।

जैन साहित्य प्रज्ञापणसूत्र में अनेक स्थलों पर मगध तथा उसकी राजधानी राजगृह (प्राकृत-रायगिह) का उल्लेख है। रामायण में इसकी स्थापना का श्रेय ब्रह्मा के पुत्र वसु को दिया गया है और इसी आधार पर इसे वसुमती कहा गया है। पौराणिक वर्णनों से पता चलता है कि इसकी स्थापना कुशाग्र ने की थी। मगध तथा अंग पड़ोसी राज्य थे और चंपा नदी इन दोनों के बीच विभाजक रेखा थी।

मगध का सर्वप्रथम उल्लेख अथर्ववेद में मिलता है। इससे सूचित होता है कि प्रायः उत्तर वैदिक काल तक मगध आर्य सभ्यता के प्रभाव क्षेत्र के बाहर था। अभिधान चिंतामणि में मगध को 'कीकट'

कहा गया है। विश्वस्फटिक नामक राजा ने मगध में पहली बार वर्णों की परंपरा प्रचलित करके आर्य सभ्यता का प्रचार किया था। वाजसनेयी संहिता में मागधों या मगध के चारणों का उल्लेख मिलता है। भगवान् बुद्ध के पूर्व बृहद्रथ तथा जरासंघ यहाँ के प्रतिष्ठित राजा थे। बिंबिसार ने गिरिव्रज (राजगीर) को अपनी राजधानी बनाई। कालांतर में मगध की राजधानी पाटलिपुत्र में स्थापित हुई।

बुद्ध के समय मगध एक शक्तिशाली व संगठित राजतंत्र था। इस समय मगध में बिंबिसार और तत्पश्चात् उसके पुत्र अजातशत्रु का शासन था। यह मगध के उत्थान का समय था और परवर्ती शताब्दियों में इस जनपद की शक्ति बराबर बढ़ती रही और मगध का इतिहास संपूर्ण भारतवर्ष का इतिहास बन गया।

वज्जि

वज्जि गणराज्य प्राचीन भारत के एक राज्य-संघ का अंग था। यह महाजनपद गंगा एवं नेपाल तराई के बीच आधुनिक मुजफ्फरपुर में विस्तृत था। इसके पश्चिम गंडक नदी बहती थी और यह इसे मल्ल या कोशल से पृथक् करती थी। पूरब की ओर यह जनपद महानंदा तथा कोसी नदी तक फैला था। वज्जि के दक्षिण मगध जनपद था। सुमंगलविलासिनी में गंगा नदी को मगध तथा वज्जि राष्ट्र की विभाजक रेखा माना गया है। इस राज्य-संघ के आठ सदस्य (अट्ठकुल) थे जिनमें मिथिला के विदेह, वैशाली के लिच्छवि तथा कुंडपुर के ज्ञातृक अधिक प्रसिद्ध थे। मिथिला का समीकरण नेपाल सीमा पर स्थित जनकपुर से किया जाता है। प्रारंभ में विदेह में राजतंत्र था, किंतु बाद में वह संघ में सम्मिलित हो गया।

वैशाली की पहचान उत्तरी बिहार के मुजफ्फरपुर जिले के आधुनिक बसाढ़ से की जाती है। कुंडग्राम वैशाली के निकट ही था, जिसकी पहचान क्षत्रियकुंड से की जाती है। जैन तीर्थंकर महावीर कुंडग्राम के ज्ञातृकगण के प्रधान सिद्धार्थ के पुत्र थे और इनकी माता त्रिशला वैशाली के लिच्छविगण की राजकुमारी थी। अन्य राज्यों में संभवतः उग्र, भोग, ईक्ष्वाकु तथा कौरव थे। इनका उल्लेख जैन साहित्य में ज्ञातृकों के साथ हुआ है और इन्हें एक ही संस्थागार (गणसभा) का सदस्य बताया गया है।

बुद्ध के काल में वज्जि गणराज्य एक शक्तिशाली संघ था। अजातशत्रु के समय में यह मगध की विस्तारवादी नीति का शिकार हो गया। वज्जियों द्वारा बोली जानेवाली भाषा बज्जिका आज भी बिहार के वैशाली, मुजफ्फरपुर, सीतामढ़ी, शिवहर एवं समस्तीपुर के अलावा नेपाल के सरलाही तथा रौतहट जिले में करोड़ों लोगों द्वारा बोली जाती है।

मल्ल

यह गणसंघ पूर्वी उत्तर प्रदेश के वर्तमान देवरिया एवं गोरखपुर जनपद में फैला हुआ था। वज्जियों के समान मल्ल भी एक संघ (गण) राज्य था। वाल्मीकि रामायण से पता चलता है कि रामचंद्र ने लक्ष्मण-पुत्र चंद्रकेतु के लिए मल्ल देश की भूमि में चंद्रकांता नामक स्वर्ग के समान दिव्य पुरी बसाई थी। महाभारत में भी मल्ल देश का उल्लेख मिलता है। बौद्ध साहित्य के अनुसार मल्लों की दो शाखएँ थीं- कुशीनारा (कुशावती) और पावा (पडरौना)। ककुस्था (आधुनिक कुकु) नदी दोनों के बीच की विभाजक रेखा थी। कुशीनारा का समीकरण देवरिया से लगभग 34 कि.मी. उत्तर कसया के अनुरुधवा गाँव के टीले से किया जाता है। यहाँ से प्राप्त एक ताम्रपत्र पर 'परिनिर्वाण चैत्य ताम्रपट्ट इति' लेख उत्कीर्ण है। यहाँ से कुछ मुद्राएँ ऐसी मिली हैं जिनपर 'श्री महापरिनिर्वाण विहारे भिक्षुसंघस्य' लेख मिलता है।

फाह्यान ने भी कुशीनगर को वैशाली से 25 योजन दूर बताया है।

मल्लों की दूसरी राजधानी पावा का समीकरण देवरिया जिले के पडरौना से किया जाता है। यद्यपि कुछ विद्वान् इसका तादात्म्य कसया से सोलह कि.मी. दक्षिण-पूर्व स्थित फाजिल नगर से करते हैं। विदेह की भाँति यहाँ भी प्रारंभ में राजतंत्रात्मक शासन था, किंतु बाद में गणतंत्र की स्थापना हो गई। बौद्ध तथा जैन साहित्य में मल्लों और लिच्छवियों की प्रतिद्वंद्विता का उल्लेख है। बुद्धकाल तक मल्लों का स्वतंत्र अस्तित्त्व बना रहा, किंतु कालांतर में यह मगध की विस्तारवादी नीति का शिकार हो गया और चौथी शती ई.पू. में मौर्य साम्राज्य में विलीन हो गया।

चेदि

चेदि राज्य आधुनिक बुंदेलखंड में यमुना के दक्षिण में चंबल और केन नदियों के बीच में फैला हुआ था। चेतिय जातक में इसकी राजधानी सोत्थिवती (शुक्तिमती) बताई गई है। महाभारत में इसे सुक्तिसाह्य कहा गया है। अंगुत्तर निकाय में चेदि प्रदेश में स्थित 'सहजाति' नामक नगर का समीकरण महाभारत के शुक्तिमती से किया जा सकता है। ऋग्वेद में चेदि नरेश कशु का उल्लेख है। रैप्सन के अनुसार कशु महाभारत में वर्णित चेदिराज वसु है। विष्णु पुराण में चेदिराज शिशुपाल का उल्लेख है जिसे महाभारतकालीन कृष्ण का प्रतिद्वंद्वी बताया गया है। चेतिय जातक में यहाँ के एक राजा का नाम उपरिचर मिलता है। महाभारत में उपरिचर का उल्लेख चेदिराज के रूप में किया गया है। पार्जीटर का विचार है कि इसने चेदि राज्य पर आक्रमण करके विजय प्राप्त की थी, इसलिए इसे चैद्योपरिचर (चैद्य का विजेता) कहा गया है। वेदव्य जातक में चेति या चेदि से काशी जानेवाली सड़क पर दस्युओं का उल्लेख है। संभवतः कलिंगराज खारवेल इसी वंश का राजा था। मुद्राराक्षस में मलयकेतु की सेना में खस, मगध, यवन, शक, हूण के साथ चेदि लोगों का भी नाम मिलता है।

वत्स

वत्स महाजनपद आधुनिक इलाहाबाद एवं बाँदा के आसपास फैला हुआ था। उत्तर-पूर्व में यमुना की तटवर्ती भूमि इसमें सम्मिलित थी। पालि ग्रंथों में इसे 'वंस' तथा जैन साहित्य में 'वच्छ' कहा गया है। इसकी राजधानी कोशांबी (कोसाम्बि) का समीकरण इलाहाबाद से लगभग 48 कि.मी. पश्चिम यमुना के बायें तट पर स्थित वर्तमान कोसम से किया जाता है। अंगुत्तरनिकाय की एक कथा में कोशांबी की स्थिति यमुना तट पर बताई गई है। रामायण तथा महाभारत में कोशांबी की स्थापना का श्रेय कुशाम्ब को दिया गया है। विष्णुपुराण से पता चलता है कि हस्तिनापुर के राजा निचक्षु ने हस्तिनापुर के गंगा की बाढ़ में बह जाने के बाद कोशांबी को अपनी राजधानी बनाई थी।

गौतम बुद्ध के समय वत्स देश का शासक पौरववंशी उदयन था जो बिंबिसार तथा अजातशत्रु का समकालीन था। उसने अवंति-नरेश चंडप्रद्योत की पुत्री वासवदत्ता से विवाह किया था। कथासरित्सागर में उदयन का संबंध पांडव परिवार से बताया गया है। कोशांबी में किये गये उत्खनन में श्रेष्ठि घोषित द्वारा निर्मित विहार, परिखा और उदयन के राजप्रासाद के अवशेष प्राप्त हुए हैं।

कुरु

कुरु महाजनपद में थानेश्वर, मेरठ और दिल्ली के क्षेत्र सम्मिलित थे। इसकी राजधानी इंद्रप्रस्थ (आधुनिक दिल्ली) थी। महाभारतकाल में कुरु जनपद की राजधानी हस्तिनापुर (मेरठ, उ.प्र.) थी।

श्रीमद्‌भागवत एवं विष्णु पुराण के अनुसार ब्रह्मा जी की वंशावली के राजा अग्नीध की पीढ़ी में कुरु राजा के नाम से संपूर्ण कुरुक्षेत्र जाना जाता है। महासुत-सोम-जातक के अनुसार कुरु जनपद का विस्तार तीन सौ कोस था। सामान्यत: घृतराष्ट्र की संतान को ही कौरव संज्ञा दी जाती है, किंतु कुरु के वंशज कौरव-पांडव दोनों ही थे। कुरु का निकटवर्ती जनपद पंचाल था, इसलिए दोनों को अनेक स्थानों पर साथ-साथ उल्लिखित किया गया है (कुरुपंचालेसु)। कुरु शासकों के राजनीतिक एवं वैवाहिक संबंध यादवों, भोजों तथा पांचालों से थे। बुद्धकाल में यहाँ का राजा कोरव्य था। प्रारंभ में कुरु एक राजतंत्रात्मक राज्य था, किंतु बाद में यहाँ गणतंत्र की स्थापना हुई।

पांचाल

पांचाल महाजनपद पश्चिमी उत्तर प्रदेश के बरेली, बदायूँ, एटा, मैनपुरी और फर्रुखाबाद जिलों में फैला हुआ था। यह उत्तर में हिमालय के भाभर क्षेत्र से लेकर दक्षिण में चर्मनवती नदी के उत्तरी तट के बीच के मैदानों में प्रसरित था। पांचाल पाँच प्राचीन कुलों- क्रीवि, केशी, सृंजय, तुर्वस तथा सोमक का सामूहिक नाम था। इसके पश्चिम में कुरु, मत्स्य तथा सूरसेन राज्य थे और पूर्व में नैमिषारण्य था। महाभारत तथा बौद्ध ग्रंथों से पता चलता है कि इसकी भी दो शाखाएँ थीं- उत्तरी पांचाल तथा दक्षिणी पांचाल और गंगा नदी दोनों के बीच की विभाजक रेखा थी।

उत्तरी पांचाल हिमालय से लेकर गंगा के उत्तरी तट तक विस्तृत था जिसकी राजधानी अहिछत्र या छत्रावती अथवा टाल्मी द्वारा उल्लिखित अदिसद्र थी। इसके अवशेष रामनगर (बरेली, उ.प्र.) से पाये गये हैं। दक्षिणी पांचाल गंगा के दक्षिणी तट से लेकर चर्मनवती तक था और उसकी राजधानी काम्पिल्य थी। काम्पिल्य की पहचान फर्रुखाबाद जिले में फतेहगढ़ के निकट स्थित कम्पिल से की गई है। कान्यकुब्ज का प्रसिद्ध नगर इसी राज्य में स्थित था। ब्राह्मण, बौद्ध तथा जैन ग्रंथों में पांचाल के शासक चूलिन ब्रह्मदत्त का उल्लेख मिलता है। रामायण के अनुसार चूलिन ब्रह्मदत्त की उत्पत्ति चूल ऋषि के आशीर्वाद से ब्रह्मताप द्वारा सोमदा नामक गंधर्व कुमारी से हुई थी, इसलिए इसका नाम ब्रह्मदत्त पड़ा। यह ब्रह्मदत्त काम्पिल्य का अधिशासक था।

शतपथ ब्राह्मण में पांचाल की 'परिचका' नामक नगरी का उल्लेख है, जिसकी पहचान महाभारत की 'एकचका' से की जा सकती है। पांचालों और कुरु महाजनपदों में परस्पर लड़ाई-झगड़े होते रहते थे। ई.पू. छठी शताब्दी में कुरु तथा पांचाल कोएक संघ राज्य था।

मत्स्य (मच्छ)

मत्स्य महाजनपद आधुनिक राजस्थान के अलवर, भरतपुर तथा जयपुर जिले में विस्तृत था। रायचौधरी के अनुसार यह राज्य चंबल पहाड़ियाँ से सरस्वती नदी के निकटवर्ती जंगलों तक फैला था। इसकी राजधानी विराटनगर (आधुनिक बैराट) की स्थापना विराट नामक राजा ने की थी। मत्स्य जनों का उल्लेख सुदास के प्रतिद्वंद्वी के रूप में बहुत पहले से मिलता है। महाभारत में मत्स्य नामक एक शासक की उत्पत्ति एक मत्स्य द्वारा वसु से बताई गई है। भागवत तथा विष्णु पुराण में मत्स्य का उल्लेख वसु के पाँच पुत्रों में किया गया है। महाभारत में सहज को मत्स्य एवं चेदि दोनों राज्यों पर शासन करते हुए वर्णित किया गया है।

दीघनिकाय में मत्स्य जनपद का उल्लेख शूरसेन के साथ मिलता है (मच्छसूरसेनेसु)। पांडवों ने मत्स्य देश में विराट के यहाँ रहकर अपने अज्ञातवास का एक वर्ष व्यातीत किया था। बुद्धकाल में इस

महाजनपद का कोई विशेष महत्त्व नहीं था।

शूरसेन

शूरसेन उत्तरी भारत का प्रसिद्ध महाजनपद था जो आधुनिक ब्रजमंडल में फैला हुआ था। इसकी राजधानी मथुरा थी। प्राचीन यूनानी लेखकों ने इस राज्य को 'शूरसेनोई' तथा इसकी राजधानी को 'मेथोरा' कहा है। संभवतः इस प्रदेश का नाम शत्रुघ्न ने मधुरापुरी (मथुरा) के शासक लवणासुर के वधोपरांत अपने पुत्र शूरसेन के नाम पर रखा था। महाभारत तथा पुराणों के अनुसार यहाँ यदु (यादव) वंश का शासन था और कृष्ण यहाँ के राजा थे। यदुवंश वीतिहोत्र, सात्वत इत्यादि कुलों में विभक्त था। सात्वत के भजिन भजमान, देवावृध, अंधक महाभोज तथा वृष्णि नामक चार पुत्र बताये गये हैं। महाभारत से भी पता चलता है कि भोज का संबंध सात्वत से था। पाणिनि तथा कौटिल्य ने भी वृष्णि वंश का उल्लेख किया है। कौटिल्य ने इसकी चर्चा गणतंत्र के रूप में की है। बुद्ध के समय यहाँ का शासक अवंतिपुत्र था, जिसकी सहायता से मथुरा में बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार संभव हुआ। मज्झिमनिकाय के अनुसार अवंतिपुत्र का जन्म अवंति नरेश प्रद्योत की कन्या से हुआ था। बी.सी. लॉ के अनुसार अवंतिपुत्र नाम इस बात को सिद्ध करता है कि शूरसेन तथा अवंति में वैवाहिक संबंध होते थे। मेगस्थनीज के समय मथुरा कृष्णोपासना का प्रमुख केंद्र था। प्रारंभ में यहाँ गणतंत्र था, किंतु बाद में राजतंत्र की स्थापना की गई। कालांतर में यह महाजनपद भी मगध की विस्तारवादी नीति का शिकार हो गया।

अश्मक

प्राचीन भारत के 16 महाजनपदों में अश्मक एक मात्र महाजनपद था जो विंध्य पर्वत के दक्षिण में स्थित था। बौद्ध साहित्य सुत्तनिपात में अश्मक को गोदावरी-तट पर बताया गया है। राजशेखर ने काव्यमीमांसा में भी अश्मक को दक्षिणापथ में बताया है।

पाणिनि के अष्टाध्यायी में भी अश्मकों का उल्लेख है। वायु पुराण और महाभारत में अश्मक नामक राजा का उल्लेख मिलता है। संभवतः इसी राजा के नाम से यह जनपद अश्मक कहलाया। प्रारंभ में अश्मक गोदावरी के तट पर बसे हुए थे और पोतलि अथवा पैठान (प्रतिष्ठानपुर) इनकी राजधानी थी। बौद्ध ग्रंथों में प्रतिष्ठान को अलक राज्य की राजधानी के रूप में वर्णित किया गया है। यह अलक जनपद अश्मक से भिन्न था और गोदावरी के उत्तर स्थित था। इसलिए प्रतिष्ठान को अश्मक की राजधानी नहीं माना जा सकता है। महाभारत में अश्मक नामक राज्य की राजधानी के रूप में पौदन्य का उल्लेख मिलता है जिसकी स्थापना का श्रेय अश्मक को दिया गया है। वायु पुराण में अश्मक तथा मूलक को इक्ष्वाकु वंश का माना गया है। रायचौधरी का अनुमान है कि अश्मक तथा मूलक राज्य के संस्थापक इक्ष्वाकु वंश से संबंधित थे। पुराणों के अनुसार इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं ने अश्मक में राजतंत्र की स्थापना किया था।

ग्रीक लेखकों ने अस्सकेनोई (अश्वकों) लोगों का उल्लेख उत्तर-पश्चिमी भारत में किया है। संभव है कि इनका दक्षिणी अश्मकों से किसी प्रकार का ऐतिहासिक संबंध रहा हो। अस्सक जातक में पोतलि नगर की गणना काशी के अंतर्गत की गई है। इससे लगता है कि किसी समय अस्सक पर काशी का अधिकार था। चुल्लकलिंग जातक से पता चलता है कि अस्सक के राजा अरुण ने कलिंग के राजा को जीता था। डी.डी. कोसम्बी का विचार है कि अश्मक का व्यापारिक महत्त्व भी था। बुद्ध के पूर्व अश्मक का अवंति के साथ निरंतर संघर्ष चल रहा था और बुद्ध के समय में अवंति ने इसे जीतकर अपने साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया था। सोननंद जातक में अश्मक को अवंति से संबंधित बताया गया है।

अवंति

बुद्धकालीन षोडश महाजनपदों में अवंति एक महत्त्वपूर्ण जनपद था। जैन ग्रंथ भगवतीसूत्र में इसी जनपद को 'मालव' कहा गया है। जैन ग्रंथ विविधतीर्थकल्प में मालवा प्रदेश का नाम अवंति मिलता है। प्राचीन अवंति वर्तमान उज्जैन के स्थान पर ही बसी थी, क्योंकि क्षिप्रा नदी जो उज्जैन के निकट बहती है, प्राचीन साहित्य में भी अवंति के निकट ही वर्णित है। इस जनपद में स्थूल रूप से वर्तमान मालवा, निमाड़ और मध्य प्रदेश के बीच का भाग सम्मिलित था। प्राचीन संस्कृत तथा पालि साहित्य में अवंति या उज्जयिनी का सैकड़ों बार उल्लेख हुआ है। पुराणों के अनुसार अवंति की स्थापना यदुवंशी क्षत्रियों द्वारा की गई थी। ऐसा लगता है कि अवंति जनपद दो भागों में बँटा था- उत्तरी अवंति और दक्षिणी अवंति। उत्तरी अवंति की राजधानी उज्जयिनी तथा दक्षिणी अवंति की राजधानी महिष्मती थी। दोनों नगर राजगृह से पैठन जानेवाले मार्ग पर स्थित थे और संभवत: वेत्रवती नदी दोनों की विभाजक रेखा थी। अवंतिका या उज्जयिनी की गणना मुक्तिदायक सात नगरों में की गई है।

महागोविंदसुत्त में महिष्मती को दक्षिणापथ अवंति की राजधानी के रूप में उल्लिखित किया गया है। महिष्मती की पहचान फ्लीट, पार्जीटर, लॉ आदि विद्वानों ने नर्मदा तट पर स्थित मान्धाता से किया है। किसी समय यहाँ हैहयवंशी राजाओं का शासन था। पुराणों से पता चलता है कि पुलिक अथवा पुणिक ने अपने स्वामी की हत्या करके अपने पुत्र प्रद्योत को अभिषिक्त किया था। बुद्ध के समय में अवंति का राजा चंडप्रद्योत था। अवंति और वत्स के बीच पारस्परिक संघर्ष छठी शताब्दी ई.पू. की एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना है। भास रचित 'स्वप्नवासवदत्ता' से पता चलता है कि प्रद्योत की पुत्री वासवदत्ता से वत्सराज उदयन ने विवाह किया था। कथासरित्सागर से यह ज्ञात होता है कि अवन्तिराज चंडप्रद्योत के पुत्र पालक ने कोशांबी को अपने राज्य में मिला लिया था। जैन ग्रंथ परिशिष्टपर्वन् से पता चलता है कि मगध और अवंति का संघर्ष लंबे समय तक चलता रहा था। चौथी शताब्दी ई.पू. में अवंति मगध में मिला लिया गया। विष्णु पुराण से पता चलता है कि संभवत: गुप्तकाल के पूर्व अवंति पर आभीर इत्यादि शूद्रों या विजातियों का आधिपत्य था।

गांधार

गांधार महाजनपद पाकिस्तान के पश्चिमी तथा अफगानिस्तान के पूर्वी क्षेत्राों में विस्तृत था। इसे आधुनिक कंदहार से जोड़ना उचित नहीं है। इस प्रदेश का मुख्य केंद्र आधुनिक पेशावर के आसपास था। इसकी राजधानी तक्षशिला थी। तक्षशिला का समीकरण रावलपिंडी से लगभग 19 कि.मी. उत्तर-पश्चिम स्थित शाह की ढ़ेरी से किया जाता है। मज्झिम निकाय में प्राचीन गांधार जनपद को सीमांत जनपद बताया गया है। केकय-नरेश युधाजित् के कहने पर रामचंद्र के भाई भरत ने गंधर्व देश को जीतकर यहाँ तक्षशिला और पुष्कलावती नामक नगरों को बसाया था।

तक्षशिला प्राचीन काल से ही शैक्षिक एवं व्यापारिक गतिविधियों का प्रमुख केंद्र था। धम्मपदट्ठकथा से पता चलता है कि प्रसेनजित की शिक्षा तक्षशिला में हुई थी। किसी समय इसमें कश्मीर भी सम्मिलित था। इसलिए गांधार जातक में इसका उल्लेख कश्मीर के साथ (कस्मीरे गंधारे अपि) मिलता है। पुरुषपुर व पुष्कलावती इस महाजनपद के अन्य प्रमुख नगर थे। इस प्रदेश का उल्लेख महाभारत और अशोक के शिलालेखों में भी मिलता है। बौद्ध साहित्य में गांधार के दो राजाओं का उल्लेख मिलता है। पहला शासक नग्गजि है, जिसे कुंभकार जातक में विदेहराज निमि तथा पांचाल नरेश दुम्मुख का समकालीन

बताया गया है। महाभारत में नग्नजित को गांधार का शासक एवं कृष्ण का समकालीन बताया गया है।

पालि साहित्य का दूसरा शासक पुक्कुसाति था जिसे विनयवस्तु में पुष्करसारिन कहा गया है। यह मगध के शासक बिंबिसार का समकालीन था और दोनों राजाओं में पारस्परिक संपर्क था। उसने एक दूत-मंडल मगध नरेश के दरबार में भेजा था। छठी शताब्दी ई.पू. के उत्तरार्द्ध में गांधार हखामनी सम्राट दारा प्रथम के साम्राज्य के अंतर्गत था।

कंबोज

कंबोज प्राचीन भारत के 16 महाजनपदों में से एक था। बौद्ध ग्रंथ अंगुत्तरनिकाय एवं पाणिनी के अष्टाध्यायी में इसकी गणना पंद्रह शक्तिशाली जनपदों में की गई है। प्राचीन संस्कृत एवं पालि साहित्य में कंबोज को प्राय: गांधार तथा यवन के साथ उल्लिखित किया गया है। बौद्ध ग्रंथ अस्सलायणसुत्तन्त तथा अशोक के तेरहवें शिलालेख में भी 'योनकंबोजेसु' पद मिलता है। पंचम शिलालेख में 'योनकंबोजगंधारयेसु' द्धधौलीऋ 'योनकंबोजगंधराणाम्' (गिरनार) का उल्लेख किया गया है। इससे लगता है कि कंबोज गांधार के निकट ही उससे संलग्न था। जिस प्रकार गांधार के उत्कृष्ट ऊन का वर्णन ऋग्वेद में मिलता है, उसी प्रकार कंबोज के कंबलों का उल्लेख यास्क के निरुक्त में हुआ है। महाभारत और राजतरंगिणी में कंबोज की स्थिति उत्तरापथ में बताई गई है। प्राचीन वैदिक साहित्य से ज्ञात होता है कि कंबोज देश का विस्तार उत्तर में कश्मीर से हिंदुकुश तक था।

वाल्मीकि-रामायण में कंबोज, वाह्लीक और वनायु देशों के श्रेष्ठ घोड़ों का अयोध्या में होना वर्णित है। महाभारत के अनुसार अर्जुन ने अपनी उत्तर दिशा की दिग्विजय-यात्रा के प्रसंग में कांबोजों को भी परास्त किया था। राजपुर, द्वारका तथा कपिशी इसके प्रमुख नगर थे। महाभारत में कहा गया है कि कर्ण ने राजपुर पहुँचकर कांबोजों को जीता, जिससे राजपुर कंबोज जनपद का एक प्रसिद्ध नगर प्रतीत होता है जिसका उल्लेख ह्वेनसांग ने भी किया है। रायचौधरी के अनुसार महाभारत काल में राजपुर ही कंबोज का प्रधान नगर था। उन्होंने राजपुर का अभिज्ञान दक्षिण-पश्चिम कश्मीर के राजौरी नामक नगर (जिला पुंछ, कश्मीर) के साथ किया है। महाभारत में कंबोज के कमठ और सुदक्षिण सहित कई राजाओं का वर्णन है जिनमें सुदर्शन और चंद्रवर्मन मुख्य हैं। कंबोजाल्लुक सूत्र से ज्ञात होता है कि वैयाकरण पाणिनि स्वयं कंबोज के सहवर्ती प्रदेश के निवासी थे। पतंजलि ने भी महाभाष्य में कंबोज का उल्लेख किया है। चतुर्थ शताब्दी ई.पू. में कंबोज में संघ या गणराज्य की स्थापना भी की गई थी क्योंकि अर्थशास्त्र में कंबोजों को 'वार्ताशस्त्रोपजीवी संघ' अर्थात् कृषि और शस्त्र से जीविका अर्जन करनेवाले संघ की संज्ञा दी गई है। मौर्यकाल में इस गणराज्य का अस्तित्व समाप्त हो गया।

वंशब्राह्मण व मज्झिमनिकाय से चता चलता है कि कंबोज में प्राचीन काल से ही आर्यों की बस्तियाँ विद्यमान थीं, किंतु महाभारत में कंबोजों को म्लेच्छजातीय बताया गया है। मनु ने भी कंबोजों को दस्यु नाम से अभिहित किया है तथा उन्हें म्लेच्छ भाषा बोलने वाला बताया है। निरुक्तकार यास्क ने भी कंबोजों की बोली को आर्य भाषा से भिन्न कहा है। भूरिदत्त जातक में भी कांबोजों के अनार्याचरण तथा अनार्य धर्म का उल्लेख मिलता है।

इस प्रकार छठी शताब्दी ई.पू. के सभी महाजनपद आज के उत्तरी अफगानिस्तान से बिहार तक और हिंदुकुश से गोदावरी नदी तक में फैले हुए थे। दीर्घनिकाय के महागोविंद सुत्त में भारत की आकृति को उत्तर में आयताकार तथा दक्षिण में त्रिभुजाकार बताया गया है। बौद्ध निकायों में भारत को पाँच भागों

में विभाजित किया गया है- उत्तरापथ (पश्चिमोत्तर भाग), मध्यदेश, प्राची (पूर्वी भाग), दक्षिणापथ तथा अपरांत (पश्चिमी भाग)। इससे लगता है कि भारत की भौगोलिक एकता ई.पू. छठी सदी से ही परिकल्पित है। जैन ग्रंथ भगवतीसूत्र और सूत्रकृतांग, पाणिनी की अष्टाध्यायी, बौधायन धर्मसूत्र (ई.पू. सातवीं सदी में रचित) और महाभारत में उपलब्ध जनपद-सूची पर दृष्टिपात करने पर पता चलता है कि उत्तर में हिमालय से कन्याकुमारी तक तथा पश्चिम में गांधार प्रदेश से लेकर पूर्व में असम तक का प्रदेश

प्राचीन भारत के गणराज्य

आरंभ में अंग्रेज इतिहासकारों की धारणा थी कि भारत में सदैव निरंकुश राजाओं का ही शासन रहा है, भारतवासी प्राचीनकाल से ही निरंकुशता के अभ्यस्त रहे हैं, किंतु 1903 ई. में रीज डेविड्स की खोजों से स्पष्ट हो गया कि प्राचीन भारत में राजतंत्रों के साथ-साथ गणराज्यों का भी अस्तित्व था। काशीप्रसाद जायसवाल पहले भारतीय इतिहासकार हैं जिन्होंने बताया कि प्राचीन काल में भारत में दो प्रकार के राज्य थे- एक राजाधीन (राजतंत्र) और दूसरे गणाधीन (गणतंत्र)। राजाधीन को एकाधीन भी कहते थे। जहाँ गण या अनेक व्यक्तियों का शासन होता था, वे गणाधीन राज्य कहलाते थे। प्राचीन ग्रंथों में अनेक स्थानों पर गणतंत्र को राजतंत्र से भिन्न बताया गया है। द्वितीय शताब्दी ई. के बौद्ध ग्रंथ अवदानशतक से पता चलता है कि जब मध्यदेश के कुछ व्यापारी दक्षिण भारत गये और वहाँ के लोगों ने उनकी राज्य-व्यवस्था के बारे में पूछा, तो उन्होंने बताया था कि कुछ देश गणों के अधीन हैं और कुछ राजा के (केचिद्देशा गणाधीना केचिद्राजाधीना)। जैन ग्रंथ आचारांगसूत्र में भिक्षुओं को चेतावनी दी गई है कि उन्हें ऐसे स्थानों पर जाने से बचना चाहिए जहाँ गणतंत्र का शासन हो। पाणिनि ने भी संघ को राजतंत्र से भिन्न बताया है- 'क्षत्रियादेक राजात् संघ् प्रतिषेधार्थकम्'। पाणिनि ने गण को संघ का पर्याय कहा है और गणराज्यों के लिए गण अथवा संघ दोनों शब्दों का प्रयोग किया है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी दो प्रकार के संघ राज्यों का उल्लेख मिलता है- एक 'वार्ताशस्त्रोपजीवी' अर्थात् व्यापार, कृषि, पशुपालन तथा युद्ध पर आश्रित हैं और दूसरे 'राजशब्दोपजीवी' अर्थात् ऐसे राज्य से है जो राजा की उपाधि धारण करते थे। प्रथम वर्ग में कंबोज तथा सुराष्ट्र के साथ क्षत्रियों का संबंध बताया गया है तथा द्वितीय वर्ग में लिच्छवियों, वृज्जियों, मल्लों, मद्रों, कुकुरों, पांचालों आदि की गणना की गई है।

महाभारत में भी गणराज्यों का उल्लेख मिलता है। महाभारत में गणाधीन और राजाधीन शासन का विवेचन करते हुए स्पष्ट कहा गया है कि साम्राज्य शासन में सत्ता एक व्यक्ति के हाथ में रहती है, किंतु गण शासन में प्रत्येक परिवार में एक-एक राजा होता है। वस्तुतः 'संघ' और 'गण' दोनों समानार्थक हैं और देश के अनेक भागों में प्रचलित राजनीतिक संस्थाएँ थीं।

यूनानी-रोमन लेखकों ने भी प्राचीन भारत में गणराज्यों के अस्तित्व को स्वीकार किया है जिसके अनुसार सिकंदर के आक्रमण के समय पंजाब तथा सिंधु में कई गणराज्य थे जो राजतंत्रों से भिन्न थे। 'अर्थशास्त्र' में इन्हें संघ कहा गया है। सिकंदर को लौटते हुए मालव, अंबष्ठ और क्षुद्रक प्रजातांत्रिक राज्य मिले थे। मुद्रासाक्ष्यों से भी गणराज्यों के ऊपर प्रकाश पड़ता है। मालव, अर्जुनायन, यौधेय जैसे गणराज्यों के प्राप्त सिक्कों पर राजा का उल्लेख न होकर गण का ही उल्लेख मिलता है। मेगस्थनीज ने लिखा है कि उसके समय में बहुत से भारतीय नगरों में गणतंत्रात्मक शासन प्रचलित था।

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्राचीन भारत में गणराज्य विद्यमान थे और वे इस अर्थ में राजतंत्रों से भिन्न थे कि उनका शासन किसी वंशानुगत राजा के द्वारा न होकर गण अथवा संघ द्वारा संचालित होता था। परंतु प्राचीन भारत के गणतंत्र आधुनिक काल के गणतंत्र से भिन्न थे। आज गणतंत्र प्रजातंत्र का समानार्थी है जिसमें शासन की अंतिम शक्ति जनता में निहित होती है, किंतु प्राचीन भारत के गणतंत्र इस अर्थ में भिन्न थे कि उनमें शासन का संचालन संपूर्ण प्रजा द्वारा न होकर कुल-विशेष के प्रमुख व्यक्तियों द्वारा किया जाता था। इस प्रकार उन्हें 'कुलीनतंत्र' या 'अभिजात तंत्र' कहा जा सकता है।

बुद्धकालीन भारत के गणराज्य

प्राचीन ग्रंथों से ज्ञात होता है कि भगवान् महावीर और बुद्ध के काल में उत्तर पूर्वी भारत में अनेक गणराज्य भी विद्यमान थे। इस समय लिच्छवि, विदेह, शाक्य, मल्ल, कोलिय, मोरिय, बुलि और भग्ग जैसे 10 गणराज्य तिरहुत से लेकर कपिलवस्तु तक फैले हुए थे। बुद्ध के जीवन के अंतिम दिनों में गणराज्यों को भारी विपत्ति का सामना करना पड़ा। जहाँ एक ओर कोशल के विडूडभ के हाथों कपिलवस्तु के शाक्यों के शाक्यों को दुर्दिन देखने पड़े, तो दूसरी ओर मगध के साम्राज्यवादी शासक अजातुशत्रु के हाथों वैशाली के लिच्छवियों को भी बुरे दिन देखने पड़े। बुद्धकालीन प्रमुख गणराज्यों में कपिलवस्तु के शाक्यों एवं वैशाली के लिच्छवियों के अलावा सुमसुमार पर्वत के भग, केसपुत्र के कालाम, रामग्राम के कोलिय, कुशीनारा के मल्ल, पावा के मल्ल, पिप्पलिवन के मोरिय और अलकल्प के बुलि महत्त्वपूर्ण थे। इन गणतंत्रों का विस्तृत विवेचन रीज डेविड्स ने अपनी पुस्तक 'बुद्धिस्ट इंडिया' में किया है।

कपिलवस्तु के शाक्य

नेपाल की तराई में स्थित शाक्य गणराज्य के उत्तर में पर्वत हिमालय, पूरब में रोहिणी नदी तथा दक्षिण और पश्चिम में राप्ती नदी बहती थी। इसकी राजधानी कपिलवस्तु थी, जिसकी पहचान नेपाल के आधुनिक तिलौराकोट से की जाती है। कुछ इतिहासकार इसकी पहचान सिद्धार्थ नगर जिले के पिपरहवा नामक स्थान से भी करते हैं, जहाँ से बौद्धस्तूप एवं धातुगर्भ-मंजूषा के अवशेष प्राप्त हुए हैं। इस बौद्ध स्तूप को शाक्यवंशीय सुकीर्ति ने प्रतिस्थापित करवाया था। महाभारत में कपिलावाट नामक तीर्थ का उल्लेख वनपर्व में मिलता है।

पालि ग्रंथों के अनुसार शाक्य इक्ष्वाकुवंशीय क्षत्रिय थे। इन ग्रंथों से पता चलता है कि राजा इक्ष्वाकु ने अपनी द्वितीय पत्नी के पुत्र को उत्तराधिकारी बनाने के उद्देश्य से पहली पत्नी से उत्पन्न चार पुत्रों एवं पाँच पुत्रियों को घर से निकाल दिया था। इन निर्वासित संतानों ने हिमालय की तराई में जाकर ऋषि कपिल की अनुकम्पा से कपिलवस्तु नामक नगर की स्थापना की। इक्ष्वाकु की चारों संतानें अपनी भगिनियों से सहवास करते थे और अपनी इसी शक्यता (क्षमता) के कारण वे शाक्य कहे गये। कुछ इतिहासकारों का अनुमान है कि शाकवन के निकट होने के कारण इन्हें शाक्य नाम मिला। कपिल आश्रम के निकट होने के कारण यह नगर कपिलवस्तु के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

बौद्ध ग्रंथों के अनुसार शाक्य गणराज्य में लगभग अस्सी हजार परिवार थे। गौतम बुद्ध का जन्म इसी गणराज्य में हुआ था, इसलिए इस गणराज्य का महत्त्व बढ़ गया था। इस गणराज्य के अन्य नगरों में चातुमा, सामगाम, खोमदुस्स, सिलावती, नगरक, देवदह, शक्कर आदि थे। बुद्ध की माता देवदह नगर की कन्या थीं।

शाक्यों की शासन-प्रणाली अत्यधिक प्रशंसनीय थी। किंतु राजनैतिक शक्ति के रूप में शाक्य गणराज्य बहुत महत्त्वशाली कभी नहीं रहा और यह कोशल राज्य की अधीनता स्वीकार करता था। शाक्यों को अपने रक्त की शुद्धता पर अत्यधिक अभिमान था और इसी कारण वे अपनी जाति के बाहर वैवाहिक संबंध स्थापित नहीं करते थे। यही कारण है कि जब कोशल नरेश प्रसेनजित ने शाक्य राजकुमारी से विवाह करने का प्रस्ताव भेजा तो शाक्यों ने भयवश उस प्रस्ताव को स्वीकार तो कर लिया, किंतु एक दासी की पुत्री वासभखत्तिया को प्रसेनजित की सेवा में भेज दिया। कहा जाता है कि इस गणराज्य का विनाश वासभखत्तिया के पुत्र विडूडभ के हाथों हुआ।

वैशाली के लिच्छवि

बुद्ध के समय में सबसे बड़ा और शक्तिशाली गणराज्य बिहार में स्थित वैशाली के लिच्छवियों का था। लिच्छवि गणराज्य की राजधानी वैशाली थी। वैशाली का समीकरण बसाढ़ से की जा सकती है, जो आधुनिक मुजफ्फरपुर में है। इस राज्य की स्थापना सूर्यवंशीय राजा इक्ष्वाकु के पुत्र विशाल ने की थी। विशाल ने ही वैशाली नगर की भी स्थापना की थी।

पालि परंपरा के अनुसार इसका नाम विशाल इसलिए पड़ा था क्योंकि यह नगर तीन बार विशाल (विसालिकता) किया गया था। लिच्छवियों की उत्पत्ति एवं नामकरण से संबंधित एक उपाख्यान पालि साहित्य में मिलता है। इसके अनुसार वाराणसी के राजा के यहाँ एक बार रानी के गर्भ से दो माह के जुड़वे बच्चे पैदा हुए, जिन्हें रानी ने भयवश नदी में फेंक दिया। एक ऋषि ने पाकर उनकी देखभाल की। धीरे-धीरे उनमें जीवन आ गया और वे कन्या तथा बालक के रूप में परिवर्तित हो गये। उनके कृश शरीर पर चमड़ा नहीं था, इसलिए उन्हें निच्छवि या लिच्छवि कहा जाने लगा। इनका पालन-पोषण एक मेषपालक परिवार कर रहा था, किंतु जब उन दोनों ने मेषपालक की संतानों को तंग करना शुरू कर दिया तो उन्हें अलग कर दिया गया, इसलिए वे वज्जि (वर्जित-वज्जितव्बा) कहलाये। बाद में दोनों का परस्पर विवाह कर दिया गया। कुछ इतिहासकार लिच्छवियों को विदेशी मानते हैं। बौद्ध, जैन एवं ब्राह्मण साहित्य में लिच्छवियों को अभिजात कुल का क्षत्रिय बताया गया है। महापरिनिब्बाणसुत्त के अनुसार लिच्छवियों ने क्षत्रिय होने के आधार पर ही बुद्ध के अवशेषों की माँग की थी कि भगवान् भी क्षत्रिय थे और हम भी क्षत्रिय हैं, इसलिए उनके अवशेषों का अंश हमें भी मिलना चाहिए (भगवापि खत्तियो मयं पि खत्तियो मयं पि अरहा भगवतो शरीरानां भागम्)। सिगाल जातक में एक लिच्छवि कन्या को 'क्षत्रिय पुत्री' कहा गया है। जैन साहित्य में भी लिच्छवियों को क्षत्रिय बताया गया है। कल्पसूत्र में महावीर के मातुल, जो लिच्छवि थे, क्षत्रिय कहे गये हैं। भगवान् महावीर की माता, जो लिच्छवि राजकुमारी थीं, को भी क्षत्राणी कहा गया है। ब्राह्मण ग्रंथ भी लिच्छवियों को क्षत्रिय बताते हैं। रामायण में वैशाली की स्थापना करनेवाले इक्ष्वाकुवंशीय क्षत्रिय बताये गये हैं। मनु भी लिच्छवियों को क्षत्रिय बताते हैं तथा उनकी गणना व्रात्यों में करते हैं। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भी लिच्छवियों को क्षत्रिय स्वीकार किया है। एक नेपाली वंशावली भी लिच्छवियों को क्षत्रिय मानती है। इस प्रकार लिच्छवि निर्विवाद रूप से क्षत्रिय थे।

ई.पू. सातवीं शताब्दी में वैशाली का लिच्छवि राज्य राजतंत्र से गणतंत्र में परिवर्तित हो गया। महावग्ग जातक के अनुसार वैशाली वज्जिसंघ कोएक समृद्धशाली नगर था, जहाँ अनेक सुंदर भवन, चैत्य तथा विहार थे। लिच्छवियों ने महात्मा बुद्ध के निवास हेतु महावन में प्रसिद्ध कूटागारशाला का निर्माण करवाया था। लिच्छवि शासक चेटक की पुत्री (बहन?) चेलना का विवाह मगध नरेश बिंबिसार से हुआ था। लिच्छवि अपनी शक्ति और प्रतिष्ठा से मगध के उदीयमान राज्य के लिए अवरोध थे, किंतु

वे अपनी रक्षा में पीछे नहीं रहे और उन्होंने कभी मल्लों के साथ तथा कभी आसपास के अन्यान्य गणों के साथ संघ बनाया जो वज्जिसंघ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। अजातशत्रु के समय में लिच्छवियों को मगध की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी।

मिथिला के विदेह

बिहार के भागलपुर तथा दरभंगा जिलों के क्षेत्रों में स्थित इस राज्य में पहले राजतंत्रात्मक व्यवस्था थी। विदेहराज जनक एक शासक ही नहीं, वरन् प्रखर दार्शनिक भी थे। बुद्धकाल में यह संघ राज्य में परिवर्तित हो गया। विदेह लोग वज्जि संघ के सदस्य थे। इसकी राजधानी मिथिला थी, जिसका समीकरण वर्तमान जनकपुर से किया जाता है। विदेह राज्य उत्तर में हिमालय, दक्षिण में गंगा, पश्चिम में गण्डक तथा पूरब में कोसी नदियों से घिरा था। महाजनक जातक के अनुसार मिथिला एवं चंपा के बीच की दूरी 60 योजन थी। इसमें मिथिला को समृद्ध, विशाल, सभी ओर से प्रकाशित तथा तोरणों से युक्त बताया गया है। इस जातक के अनुसार मिथिला की स्थापना विदेह ने की थी। विदेह राजनीतिक दृष्टि से सुदृढ़ था और इसका समकालीन राजवंशों से वैवाहिक संबंध भी था। बिंबिसार की एक रानी वैदेही थी। भास के स्वप्नवासवदत्ता के अनुसार स्वयं उदयन वैदेहीपुत्र थे। महावीर की माता त्रिशला भी विदेह राजकुमारी थीं। बुद्ध के समय में मिथिला एक प्रसिद्ध व्यापारिक केंद्र था, जहाँ श्रावस्ती के व्यापारी अपना माल बेचने आते थे।

सुस्सुमार पर्वत के भग

सुस्सुमार पर्वत का समीकरण मिर्जापुर जिले के चुनार से किया जाता है। भग गणराज्य के अधिकार-क्षेत्र में विंध्य क्षेत्र की यमुना तथा सोन नदियों के बीच का प्रदेश स्थित था। काशीप्रसाद जायसवाल के अनुसार भर्ग देश का विस्तार मिर्जापुर तथा उसके आसपास था और यहीं उनकी राजधानी स्थित थी जिसे सुस्मारगिरि नगर कहा गया है। संभवत: भग ऐतरेय ब्राह्मण में उल्लिखित भर्ग वंश से संबंधित थे। भग लोग वत्स की अधीनता स्वीकार करते थे क्योंकि वत्सराज उदयन का पुत्र बोधिकुमार सुस्सुमारगिरि में निर्मित कोकनद नामक भवन में निवास करता था।

अलकल्प के बुलि

बुद्धकालीन गणतंत्रों में अलकप्प के बुलियों का उल्लेख भी मिलता है (बुलयो अलकप्पका)। यह प्राचीन गणराज्य बिहार के शाहाबाद, आरा और मुजफ्फरपुर जिलों के बीच स्थित था। बुलियों का बैठद्वीप (बेतिया, चंपारन) के साथ घनिष्ठ संबंध था और यही बुलियों की राजधानी थी। कुछ विद्वान् वेठद्वीप का समीकरण कसिया से भी करते हैं। धम्मपदट्ठकथा के अनुसार अलकप्प का विस्तार दस योजन था। बुलि लोग बौद्ध धर्म के अनुयायी थे। महापरिनिब्बाणसुत्त से पता चलता है कि बुद्ध की मृत्यु के पश्चात् उनके अस्थि-अवशेष को प्राप्त कर बुलियों ने उस पर अलकप्प में एक स्तूप का निर्माण करवाया था। इससे लगता है कि बुलि शाक्यों से संबंधित थे।

केसपुत्त के कालाम

केसपुत्त की निश्चित पहचान कर पाना कठिन है। संभवत: यह गणराज्य कोशल के पश्चिम में सुल्तानपुर जिले के कुंडवार से लेकर पालिया नामक स्थान तक फैला हुआ था। वैदिक साहित्य से ज्ञात होता है कि कालामों का संबंध पांचाल जनपद के केशियों से था। इसी गणराज्य के आलार कालाम नामक आचार्य से, जो उरुवेला के समीप निवास करते थे, गौतम बुद्ध ने पहला उपदेश ग्रहण किया था। इस गणराज्य के एक दूसरे आचार्य भरण्डु का आश्रम कपिलवस्तु में था। केसपुत्तियसुत्त से लगता है कि

कालाम लोग कोशल राज्य की अधीनता स्वीकार करते थे।

रामगाम के कोलिय

शाक्य गणराज्य के पूर्व में रामगाम के कोलियों का गणराज्य था। यह गणराज्य दक्षिण में सरयू नदी तक प्रसरित था। कोलियों की राजधानी रामगाम की पहचान कनिंघम महोदय कुशीनगर एवं कपिलवस्तु के बीच मानकर आधुनिक देवकाली गाँव से करते हैं। कुछ इतिहासकार रामगाम का समीकरण वर्तमान रामपुर कारखाना (देवरिया, उ.प्र.) से करते हैं। राजबली पांडेय इसे वर्तमान गोरखपुर के रामगढ़ ताल से समीकृत करते हैं जो उचित प्रतीत होता है। पालि परंपरा के अनुसार कोलिय भी इक्ष्वाकुवंशीय क्षत्रिय थे। बौद्ध ग्रंथों से पता चलता है कि इक्ष्वाकु नरेश के निर्वासित चार पुत्रों तथा पाँच पुत्रियों में से चार ने एक-दूसरे से विवाह कर लिया था, किंतु एक (ज्येष्ठ) बच गई थी जो कुष्ठरोग से पीड़ित होने के कारण अलग कर दी गई थी। उसी समय वाराणसी का एक राजा राम कुष्ठरोग से पीड़ित होने के कारण यहीं आकर कोल वृक्ष पर औषधि का सेवन करता हुआ कुष्ठरोग से मुक्त हो गया था। इक्ष्वाकु राजकुमारी भी राजा राम के संपर्क में आकर रोग-मुक्त हो गई तथा दोनों ने परस्पर विवाह कर लिया। राम का ज्येष्ठ पुत्र जब उन्हें लेने आया तो उन्होंने यहीं कोल वृक्षों को काटकर एक नगर बसाने को कहा। यह नया नगर कोलिय नगर कहलाया और यहाँ के निवासी कोलिय कहे गये।

सत्यता जो भी हो, इतना निश्चित है कि शाक्य तथा कोलिय प्रतिष्ठित क्षत्रिय कुल के थे और एक-दूसरे से संबंधित भी थे। कोलिय गण के लोग अपनी पुलिस शक्ति के लिए प्रसिद्ध थे। शाक्य और कोलिय गणराज्य के बीच रोहिणी नदी बहती थी और दोनों राज्यों के लोग पीने और सिंचाई के लिए रोहिणी नदी के जल का उपयोग करते थे, इसलिए रोहिणी नदी के जल के बँटवारे को लेकर शाक्यों और कोलियों में प्राय: संघर्ष होता रहता था। रुक्खधम्म तथा फंदन जातक से पता चलता है कि जिस समय शास्ता जेतवन में रुके थे, उसी समय शाक्यों एवं कोलियों में पानी के लिए भयंकर संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो गई थी, किंतु बुद्ध ने हस्तक्षेप कर इस संघर्ष को शांत कर दिया था।

कुशीनारा के मल्ल

कुशीनारा का तादात्म्य देवरिया से लगभग 34 कि.मी. उत्तर वर्तमान कसया के निकट स्थित अनुरुधवा गाँव के टीले से किया जाता है। यहाँ से एक ताम्रपत्र भी मिला है जिस पर 'परिनिर्वाण चैत्य ताम्रपट्ट इति' लेख उत्कीर्ण है। यहाँ से प्राप्त कुछ मुद्राओं पर 'श्री महापरिनिर्वाण विहारे भिक्षुसंघस्य' लेख भी मिलता है। फाह्यान ने कुशीनगर को वैशाली से 25 योजन दूर बताया है। वाल्मीकि रामायण में मल्लों को लक्ष्मण के पुत्र चंद्रकेतु मल्ल का वंशज बताया गया है।

पावा के मल्ल

पावा आधुनिक देवरिया जिले का पडरौना था, यद्यपि कार्लाइल, राजबली पांडेय तथा भिक्षु धर्मरक्षित इसकी पहचान फाजिल नगर से करने के पक्ष में हैं। मल्ल सैनिक प्रवृत्ति की जाति थी। जैन साहित्य से ज्ञात होता है कि मगध नरेश अजातशत्रु के भय से मल्लों ने लिच्छवियों के साथ मिलकर एक संघ की स्थापना की थी। किंतु अजातुशत्रु ने लिच्छवियों को पराजित करने के बाद मल्लों को भी पराजित कर दिया था।

पिप्पलिवन के मोरिय

मोरिय गणराज्य के लोग शाक्यों की ही एक शाखा थे। महावंसटीका से पता चलता है कि कोशल नरेश विडूडभ के अत्याचारों से बचने के लिए जो शाक्य वंश के लोग हिमालय प्रदेश में भाग गये

थे, उन्होंने वहाँ मोरों की कूँक से गुंजायमान स्थान में पिप्पलिवन नामक नगर बसाया। मोरों के प्रदेश का निवासी होने के कारण ही वे मोरिय कहे गये। संभवतः मोर की गर्दन के समान निर्मित भवनों के कारण यह नाम दिया गया था। इसी मोरिय शब्द से मौर्य बना है।

मोरिय अभिजात क्षत्रिय थे। महापरिनिब्बाणसुत्त के अनुसार भगवान् बुद्ध की अस्थियों के लिए दावा करने वालों में मोरिय भी एक थे जो विलंब से पहुँचने के कारण अवशेषांश नहीं प्राप्त कर सके थे। मौर्य सम्राट चंद्रगुप्त इसी मोरिय गणराज्य में उत्पन्न हुआ था। यद्यपि पिप्पलिवन को गोरखपुर जिले के कुसुम्हीं के पास स्थित राजधानी नामक ग्राम से समीकृत किया जाता है, किंतु इसका समीकरण सिद्धार्थनगर के पिपरहवा से किया जाना अधिकम तर्कसंगत लगता है।

गणराज्यों का शासन-विधान और कार्य-पद्धति

गणराज्यों की शासन-पद्धति के संबंध में पता चलता है कि वैशाली जैसे बड़े राज्यों की शासन-व्यवस्था मोरिय, कोलिय आदि छोटे राज्यों से अपेक्षाकृत भिन्न रही होगी। गणतंत्रीय शासन में प्रजा का कल्याण दूर-दूर तक व्याप्त होता है। गण की कार्यपालिका का अध्यक्ष एक निर्वाचित पदाधिकारी होता था जिसे गणराज्य का प्रमुख नायक या राजा कहा जाता था। सामान्य प्रशासन की देखभाल के साथ-साथ गणराज्य में आंतरिक शांति एवं सामंजस्य बनाये रखना उसका कर्त्तव्य था। इसका काम कर वसूलना तथा जनता के लिए सड़क आदि बनवाना था। अन्य पदाधिकारियों में उपराजा, सेनापति, भांडागारिक आदि प्रमुख थे।

गणराज्य की वास्तविक शक्ति एक सर्वोच्च सभा (गणसभा) अथवा संस्थागार में निहित होती थी, जो संसद जैसी होती थी। इस सभा के सदस्यों की संख्या परंपरा से नियत थी। वस्तुतः गण के निर्माण की इकाई कुल थी। प्रत्येक कुल का एक-एक व्यक्ति गणसभा का सदस्य होता था। गणसभा के प्रत्येक कुलवृद्ध या सदस्य की संघीय उपाधि 'राजा' होती थी। एकपण्ण जातक के अनुसार लिच्छिवि गणराज्य की केंद्रीय समिति में 7,707 राजा थे तथा उपराजाओं और सेनापतियों तथा कोषाध्यक्षों की संख्या भी इतनी ही थी। एक स्थान पर शाक्यों के संस्थागार (गणसभा) के सदस्यों की संख्या 500 बताई गई है। ये संभवतः राज्य के कुलीन परिवारों के सदस्य थे जो 'राजा' की उपाधि धारण करते थे। प्रत्येक राजा के अधीन उपराजा, सेनापति, भांडागारिक आदि पदाधिकारी होते थे। प्रतीत होता है कि लिच्छवि राज्य अनेक छोटी-छोटी प्रशासनिक इकाइयों में विभक्त था और प्रत्येक इकाई का अध्यक्ष एक राजा होता था जो अपने अधीन पदाधिकारियों की सहायता से उस इकाई का शासन संचालित करता था। प्रत्येक इकाई के अध्यक्ष केंद्रीय समिति के सदस्य होते थे।

गणसभा में गण के समस्त प्रतिनिधियों को सम्मिलित होने का अधिकार था, किंतु सदस्यों की संख्या कई सहस्र तक होती थी, इसलिए विशेष अवसरों को छोड़कर उपस्थिति प्रायः परिमित ही रहती थी। शासन के लिए अंतरंग अधिकारी नियुक्त किये जाते थे, किंतु नियम-निर्माण का पूरा दायित्व गणसभा पर ही था। इस सभा में राजनीतिक प्रश्नों के अतिरिक्त और भी अनेक प्रकार के सामाजिक, व्यावहारिक और धार्मिक प्रश्न भी विचारार्थ आते रहते थे। गणराज्यों से संबंधित सभी महत्त्वपूर्ण विषयों, जैसे- संधि-विग्रह, कूटनीतिक संबंध, राजस्व-संग्रह आदि के ऊपर गणसभा के सदस्य संस्थागार में उपस्थित होकर पर्याप्त वाद-विवाद के पश्चात् बहुमत से निर्णय करते थे। रोहिणी जल-विवाद और विडूडभ के आक्रमण के समय शाक्यों ने अपनी राजधानी के केंद्रीय संस्थागार में उपस्थित होकर पर्याप्त वाद-विवाद के बाद ही निर्णय किया था। लिच्छवि गणराज्य में भी सेनापति खंड की मृत्यु के बाद

सेनापति सिंह की नियुक्ति संस्थागार के सदस्यों द्वारा निर्वाचन के आधार पर की गई थी। कुशीनारा के मल्लों ने बुद्ध के अंतयेष्ठि और उनकी धातुओं के संबंध में अपने संस्थागार में विचार-विमर्श किया था। इस प्रकार स्पष्ट है कि गणराज्यों का शासन प्रजातांत्रिक ढ़ंग से संचालित किया जाता था। यही कारण है कि बुद्ध ने अपने भिक्षु संघ की कार्यपद्धति को भी गणराज्यों की कार्य-पद्धति पर ही आधारित किया। इस प्रकार संस्थागार की कार्यवाही आधुनिक प्रजातंत्रात्मक संसद के समान थी।

इन गणों के विधान का विवरण जैनसूत्रों व महाभारत में मिलता है। संस्थागार की कार्यवाही के संबंध में पता चलता है कि प्रत्येक सदस्य के बैठने की अलग व्यवस्था थी। इस कार्य के लिए 'आसनपन्नापक' नामक पदाधिकारी होता था। कोरम की पूर्ति, प्रस्ताव रखने, मतगणना आदि के लिए सुस्पष्ट और निश्चित नियम थे। गणसभा में नियमानुसार प्रस्ताव (ज्ञप्ति) रखा जाता था। उसकी तीन वाचना होती थी और विरोध होने पर शलाकाओं द्वारा गुप्त मतदान प्रणाली के माध्यम से मतदान करके बहुमत से निर्णय लिया जाता था। मतदान-अधिकारी को 'शलाका-ग्राहक' कहा जाता था। प्रत्येक सदस्य को अनेक रंगों की शलाकाएँ दी जाती थीं। विशेष प्रकार के मतदान के लिए विशेष प्रकार की शलाकाएँ होती थीं। मत के लिए 'छंद' शब्द का प्रयोग किया जाता था। अनुपस्थित सदस्य के भी मत लेने के नियम थे। गणसभा (संस्थागार) के कार्यों को सकुशल संपन्न कराने के लिए अनेक पदाधिकारी होते थे। गणपूरक नामक पदाधिकारी गणसभा का सचेतक था, वह गण की बैठकों में कोरम पूर्ण करवाता था और अन्य कार्यवाही संपन्न करवाता था। गणों की कार्यपालिका का अध्यक्ष ही संभवतः संस्थागार का भी प्रधान होता था।

सामान्यतया गणराज्यों की गतिविधियों पर गणसभा (संस्थागार) का पूर्ण नियंत्रण होता था। संभवतः गणराज्यों में एक मंत्रिपरिषद् भी होती थी जिसमें चार से लेकर बीस सदस्य होते थे। गणाध्यक्ष ही मंत्रिपरिषद् का प्रधान होता था। राज्य के उच्च पदाधिकारियों, मंत्रियों तथा प्रादेशिक शासकों की नियुक्ति प्रायः गणसभा द्वारा की ही जाती थी। यही केंद्रीय समिति (गणसभा) राष्ट्रीय न्यायाधिकरण (सर्वोच्च न्यायालय) के रूप में भी कार्य करती थी।

बुद्धघोष की टीका सुमंगलविलासिनी से वज्जिसंघ की न्याय-व्यवस्था के संबंध में पता चलता है कि इस संघ में आठ न्यायालय थे और किसी को तभी दंडित किया जा सकता था जब उसे एक-एक करके आठों न्यायालय दोषी सिद्ध कर दें। राजा का न्यायालय अंतिम होता था। प्रत्येक न्यायालय अपराधी को निर्दोष होने पर मुक्त तो कर सकता था, किंतु अपराध सिद्ध होने पर दंडित नहीं कर सकता था। वह उसे उच्चतर न्यायालय में भेज देता था। दंड देने का अधिकार केवल राजा को था। राजा दंड देते समय पूर्व-दृष्टांतों 'पवेनिपोट्ठक' का अनुसरण करता था। इन न्यायालयों के प्रधान अधिकारी विनिच्चय महामात्त, वोहारिक, सूत्ताधार, अट्ठकुलक, भांडागारिक, सेनापति, उपराजा और राजा थे। वज्जि गणराज्य में बहुत बड़े अपराध पर ही प्राणदंड की सजा दी जाती थी। इस प्रकार लिच्छवि गणराज्य में व्यक्ति की स्वतंत्रता को पर्याप्त महत्व दिया गया था। मानव-स्वतंत्रता का ऐसा समर्थन विश्व इतिहास में अद्वितीय है।

गणराज्यों के विवरणों से लगता है कि गणराज्य पर्याप्त समृद्ध और संपन्न थे। गणराज्यों में ग्राम पंचायतें भी होती थीं जो राजतंत्रात्मक राज्यों की ग्राम पंचायतों की भाँति कार्य करती थीं। ये ग्राम पंचायतें कृषि, उद्योग, व्यापार आदि के विकास का ध्यान रखती थीं। अधिकतर गणराज्य या गणसंघ बौद्ध धर्मानुयायी थे। भगवान् महावीर और बुद्ध का जन्म तथा लालन-पालन गणराज्यों में ही हुआ था। इन श्रमण संन्यासियों ने गणों अथवा संघों के आदर्श पर ही अपने धर्मसंघ की स्थापना कर इसी प्रकार के

नियम बनाये। महापरिनिर्वाणसूत्र से ज्ञात होता है कि बुद्ध ने वज्जिसंघ की कार्यप्रणाली की बड़ी प्रशंसा की थी। उन्होंने बौद्ध भिक्षुओं के संप्रदाय को भिक्खु संघ (अर्थात् भिक्षुओं का गणराज्य) की संज्ञा दी, इसलिए वहाँ चुनाव की प्रथा थी।

युद्ध से गण की स्थिति सकुशल नहीं रहती, इसलिए गणों ने प्राय: शम या शांति की नीति अपनाई। इन गणराज्यों के पास अपनी कोई सेना नहीं होती थी, गणराज्य का प्रत्येक नागरिक अस्त्र-शस्त्र की विद्या में निपुण होता था और आवश्यकता पड़ने पर सैनिक का कार्य करता था। गणराज्य जब तक संघ-जीवन के नियमों का पालन करते थे, अपराजेय थे। महाभारत में भी गणों की समृद्धि और वैभव का रहस्य बताते हुए कहा गया है कि 'लोभ और ईर्ष्या, भेद एवं द्वेष ही गण के पतन का कारण बनते हैं। गण में सर्वव्यापी समता (सदृशता) होती है, इसलिए गण किसी प्रकार तोड़े नहीं जा सकते, न शौर्य से, न धूर्तता से और न रूप के जाल से। शत्रु केवल भेद उत्पन्न कर फूट डालने से जीत सकते हैं। जब अजातशत्रु ने अपने मंत्री वर्षकार को भेजकर बुद्ध से वज्जियों को विजित करने का उपाय पूछा था, तो बुद्ध ने आनंद को संबोधित कर अप्रत्यक्ष उत्तर दिया था कि 'आनंद! जब तक वज्जियों के अधिवेशन एक पर एक और सदस्यों की प्रचुर उपस्थिति में होते रहेंगे, जब तक वे अधिवेशनों में एक मन से बैठते, एक मन से उठते और एक मन से संघकार्य संपन्न करते रहेंगे,....उस समय तक हे आनंद! वज्जियों का उत्कर्ष निश्चित है, अपकर्ष संभव नहीं है।' इस प्रकार गणतंत्रीय संविधान में भारतीय समाज ने सर्वोदय के सिद्धांत का साक्षात्कार किया था। भारत की जीवन-प्रवृत्ति, उसकी प्रकृति तो विकेंद्रीकरण में थी, जिसका विकास गणराज्य के संघ में हुआ। यह गणतंत्र पद्धति विश्व को भारत की देन है।

गणराज्यों का उत्थान-पतन

भारतवर्ष में लगभग एक सहस्र वर्षों (छठी शताब्दी ई. पू. से चौथी सदी ई.) तक गणराज्यों के उत्थान-पतन का इतिहास मिलता है। नवीन पुरातात्त्विक उत्खननों में गणराज्यों के कुछ लेख, सिक्के और मिट्टी की मुहरें प्राप्त हुई हैं, विशेषकर यौधेय गणराज्य के संबंध में कुछ प्रमाणिक सामग्री प्राप्त हुई है। गणराज्यों की झलक गुप्त साम्राज्य के उदयकाल तक दिखाई पड़ती है। धरणिबंध के आदर्श से प्रेरित समुद्रगुप्त के सैनिक अभियानों के कारण अधिकांश गणराज्य गुप्त साम्राज्य में विलीन हो गये।

भारतीय इतिहास के वैदिक युग में जनों अथवा गणों की प्रतिनिधि संस्थाएँ विदथ, सभा और समिति थीं। कालांतर में उन्हीं का स्वरूप वर्ग, श्रेणी, पूग और जानपद आदि में रूपांतरण हो गया। राजतंत्रात्मक और गणतंत्रात्मक परंपराओं का संघर्ष चलता रहा। गणराज्य राजतंत्र में और राजतंत्र गणराज्य में बदलते रहे। ऐतरेय ब्राह्मण के उत्तरकुरु और उत्तरमद्र नामक वे राज्य, जो हिमालय के पार चले गये थे, पंजाब में कुरु और मद्र नामक राजतंत्रवादियों के रूप में रहते थे। कालांतर में मद्र और कुरु तथा उन्हीं की तरह शिवि, पांचाल, मल्ल और विदेह भी गणतंत्रात्मक हो गये। महाभारत युग में अंधकवृष्णियों का संघ गणतंत्रात्मक था।

भारतवर्ष में गणराज्यों का सबसे अधिक विस्तार वाह्लीक (आधुनिक पंजाब) प्रदेश में हुआ था। पाणिनि (ई.पू. पाँचवीं-सातवीं सदी) के समय सारा वाह्लीक देश (पंजाब और सिंधु) गणराज्यों से भरा था। उत्तर पश्चिम के इन गणराज्यों को पाणिनि ने 'आयुधजीवी संघ' कहा है। वे ही अर्थशास्त्र के 'वार्ताशस्त्रोपजीवी संघ' प्रतीत होते हैं। ये लोग शांतिकाल में वार्ता या कृषि आदि पर निर्भर रहते थे, किंतु युद्धकाल में योद्धा बनकर संग्राम करते थे। इनका राजनीतिक संघटन बहुत दृढ़ था और ये अपेक्षाकृत विकसित थे। इनमें क्षुद्रक और मालव दो गणराज्य विशेष उल्लेखनीय हैं। इन दोनों की संयुक्त सेना के

लिए पाणिनि ने गण पाठ में 'क्षौद्रकमालवी' संज्ञा का प्रयोग किया है। उन्होंने यवन-आक्रांता सिकंदर से घनघोर युद्ध किया था। पंजाब के उत्तर-पश्चिम और उत्तर-पूर्व में भी अनेक छोटे-मोटे गणराज्य थे, जो त्रिगर्त (वर्तमान काँगड़ा) के पहाड़ी प्रदेश में विस्तारित थे, जिन्हें पर्वतीय संघ कहते थे। एक दूसरी शृंखला सिंधु नदी के दोनों तटों पर गिरि-गह्वरों में बसनेवाले महाबलशाली जातियों का था, जिन्हें प्राचीनकाल में ग्रामणीय संघ कहते थे। वे प्राय: लूटमार कर जीविका चलानेवाले थे। संभवत: इनमें भी जो कुछ विकसित थे, उन्हें पूग और जो पिछड़े हुए थे, उन्हें 'व्रात्य' कहा जाता था। संघ या गणों का एक तीसरा गुच्छा सौराष्ट्र में विस्तारित हुआ था, जिनमें अंधकवृष्णियों का संघ या गणराज्य बहुत प्रसिद्ध था। कृष्ण इसी संघ के सदस्य थे, इसलिए शांतिपर्व में उन्हें अर्धभोक्ता राजन्य कहा गया है। ज्ञात होता है कि सिंधु नदी के दोनों तटों पर गणराज्यों की यह शृंखला ऊपर से नीचे को उतरती हुई सौराष्ट्र तक फैल गई थी क्योंकि सिंधु नामक प्रदेश में भी मुचकर्ण, ब्राह्मणक और शूद्रक जैसे कई गणों का वर्णन मिलता है।

पंजाब और सिंधु से लेकर पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार तक के सारे प्रदेश में उनकी स्थिति बनी रही। ई.पू. चौथी सदी में यूनान के साम्राज्यवादी आक्रमणकारी सिकंदर को अपने विजय अभियान में एक-एक इंच जमीन के लिए केवल लड़ना ही नहीं पड़ा, कभी-कभी छद्म और विश्वासघात का भी आश्रय लेना पड़ा। पंजाब क्षेत्र के गणों की वीरता, सैन्यकुशलता, राज्यभक्ति, देशप्रेम तथा आत्माहुति के उत्साह का वर्णन करने में यूनानी इतिहासकार भी नहीं चूके। कठ, सौभूति, अस्सक, यौधेय, मालव, क्षुद्रक, अग्रश्रेणी क्षत्रिय, सौभूति, मुचुकर्ण और अम्बष्ठ आदि अनेक गणों के नर-नारियों ने सिकंदर के दाँत खट्टे कर दिये और मातृभूमि की रक्षा में अपने लहू से पृथ्वी लाल कर दी। किंतु सब व्यर्थ था, उनकी अकेलेपन की नीति और मतैक्य का अभाव, उनके विनाश के कारण बने। सिकंदर ने तो उन्हें जीता ही, मगध के महत्त्वाकांक्षी शासक वैदेहीपुत्र अजातशत्रु ने भी गणराज्यों की स्वतंत्रता पर प्रहार किया, जिससे छोटे और कमजोर गणराज्य साम्राज्यवाद की धारा में समाहित हो गये। अजातशत्रु और वर्षकार की नीति चंद्रगुप्त और चाणक्य का आदर्श थी। अब साम्राज्यवादी शक्तियों का सर्वात्मसाती स्वरूप सामने आया और अधिकांश गणतंत्र मौर्यों के विशाल एकात्मक शासन में विलीन हो गये।

परंतु गणराज्यों की आत्मा नहीं दबी। सिकंदर की तलवार, अजातशत्रु का प्रहार, मौर्यों की मार अथवा हिंद-यवनों और शक-कुषाणों की आक्रमणकारी बाढ़, उनमें से मात्र कुछ निर्बलों को ही बहा सकी। अपनी स्वतंत्रता का हर मूल्य चुकाने को तैयार मल्लोई (मालव), यौधेय, मद्र और शिवि पंजाब से नीचे उतरकर राजपूताना में प्रवेश कर गये और शताब्दियों तक उनके गणराज्य बने रहे। उन्होंने साकल आदि अपने प्राचीन नगरों का मोह छोड़कर माध्यमिका तथा उज्जयिनी जैसे नये नगर बसाये, अपने सिक्के चलाये और अपने गणों की विजयकामना की। मालव गणतंत्र ने शकों को पराजित कर अपने गण की पुनर्स्थापना की और इस विजय की स्मृति में ई.पू. 57-56 में एक नया संवत् चलाया, जो विक्रम संवत् के नाम से प्रसिद्ध है और जो आज भी भारतीय गणना-पद्धति का प्रमुख आधार है।

प्रतिभाशाली गुप्त सम्राटों की साम्राज्यवादी नीति ने गणतांत्रिक स्वतंत्रता की भावना की अंतिम लौ को बुझा दिया। भारतीय गणों में प्रमुख लिच्छवियों के ही दौहित्र समुद्रगुप्त ने उनकी स्वतंत्रता का हरण कर लिया। उसने मालव, आर्जुनायन, यौधेय, काक, खरपरिक, आभीर, प्रार्जुन एवं सनकानीक आदि को प्रणाम, आगमन और आज्ञाकरण के लिए बाध्य कर धरणि-बंध के आदर्श को पूर्ण किया। यह भारतीय गणराज्यों के भाग्य-चक्र की विडंबना ही थी कि उन्हीं के सगे-संबंधियों ने उन पर प्रहार किया, जैसे- वैदेहीपुत्र अजातशत्रु, मोरियगण के राजकुमार चंद्रगुप्त मौर्य, लिच्छवि-दौहित्र समुद्रगुप्त, किंतु

गणतंत्रीय भावनाओं को मिटा पाना सरल नहीं रहा और अहीर तथा गूजर जैसी अनेक जातियों के रूप में यह भावना कई शताब्दियों तक पनपती-पलती रही।

आज साम्राज्यों और सम्राटों के नामोनिशान मिट चुके हैं तथा निरकुंश और असीमित राज्य-व्यवस्थाएँ समाप्त हो चुकी हैं, किंतु स्वतंत्रता की वह मूलभावना मानव-हृदय से नहीं दूर की जा सकती जो गणराज्य परंपरा की कुंजी है। विश्व इतिहास के प्राचीन युग के गणों की तरह आज के गणराज्य अब न तो क्षेत्र में अत्यंत छोटे हैं और न आपस में फूट और द्वेषभावना से ग्रस्त। उनमें न तो प्राचीन ग्रीक का दासवाद है और न प्राचीन और मध्यकालीन भारत और यूरोप के गणराज्यों का सीमित मतदान। उनमें अब समस्त जनता का प्राधान्य हो गया है और उसके भाग्य की वही विधायिका है। अब तो सैनिक अधिनायकवादी भी जनवाद का दम भरते हैं और कभी-कभी उसके लिए कार्य भी करते हैं। गणराज्य की भावना अमर है और उसका जनवाद भी सदैव अमर रहेगा।

बुद्धकालीन सत्ता-विस्तार का संघर्ष

बुद्धकालीन सोलह महाजनपदों एवं गणतंत्रात्मक राज्यों की पारस्परिक शत्रुता और संघर्ष के परिणामस्वरूप ई.पू. छठी सदी के उत्तरार्द्ध तक कई छोटे महाजनपद और गणतंत्र शक्तिशाली महाजनपदों की विस्तारवादी नीति का शिकार होकर या तो उन्हीं में विलीन हो गये या फिर महत्त्वहीन हो गये। कोशल ने काशी का गौरव धूल में मिला दिया, तो मगध ने अंग के ऐश्वर्य की इतिश्री कर दी। अवंति भी चेदि के कुछ भाग पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर वत्स की सीमा स्पर्श करने लगा। बुद्धकाल तक आते-आते समस्त उत्तर भारत की राजनीति में केवल चार महत्त्वपूर्ण शक्तिशाली राजतंत्रों- कोशल, वत्स, अवंति और मगध ने प्रसिद्धि प्राप्त की और इन्हीं चारों की तूती बोल रही थी। कोशल में स्वनामधन्य प्रसेनजित, वत्स में भास के स्वप्नवासवदत्ता के धीरोदात्त नायक उदयन, अवंति में सैनिक शक्ति के पुंज महासेन चंडप्रद्योत तथा मगध में हर्यंक कुल के नायक बिंबिसार अपनी साम्राज्यवादी नीति से पड़ोसियों पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयास करने लगे।

कोशल

कोशल उत्तर-पूर्व भारत का प्रमुख राज्य था जिसकी राजधानी श्रावस्ती थी। श्रावस्ती का समीकरण गोंडा जिले के सहेत-महेत नामक स्थान से किया जाता है। बुद्ध के पूर्व कोशल नरेश कंस ने काशी राज्य को जीत लिया था जिसे जातक ग्रंथें में 'बारानसिग्गहो' (बनारस को जीतनेवाला) कहा गया है। काशी के विलय से कोशल का महत्त्व बढ़ गया क्योंकि काशी व्यापार और वस्त्रोद्योग का प्रमुख केंद्र था तथा तक्षशिला, सौवीर तथा अन्य दूरवर्ती स्थानों से उसका व्यापारिक संबंध था। कोशल के पूरब में मगध उसका प्रतिद्वंद्वी राज्य था और काशी का राज्य ही दोनों के बीच वैमनस्य का मुख्य कारण था।

कोशल का प्रथम ज्ञात ऐतिहासिक शासक महाकोशल था जिसने अपनी पुत्री कोशल देवी के विवाह के अवसर पर बिंबिसार को काशी का एक गाँव, जिसकी आमदनी एक लाख रुपये थी, अपनी पुत्री के स्नान एवं सुगंध-व्यय के लिए दिया था। इससे स्पष्ट है कि महाकोशल के समय में ही काशी का कोशल में विलय हो गया था।

संभवत: शाक्य एवं कालाम गणतंत्रों पर भी कोशल का प्रभुत्व स्थापित हो गया था। बुद्धकाल में कोशल का राजा प्रसेनजित था जो महाकोशल का पुत्र और उत्तराधिकारी था। प्रसेनजित को बौद्ध ग्रंथों में 'पसेनदी' कहा गया है। प्रसेनजित की शिक्षा-दीक्षा तक्षशिला में संपन्न हुई थी तथा महालि, बंधुल मल्ल एवं ब्राह्मण पोक्खरिसादि प्रसेनजित के सहयोगी, सहपाठी तथा अभिन्न मित्र थे। प्रसेनजित ने बंधुल मल्ल को

अपना सेनापति नियुक्त किया और पोक्खरिसादि को एक गाँव दान में दिया। प्रसेनजित का विवाह संभवतः मगध की किसी राजकुमारी से हुआ था। कोशल नरेश प्रसेनजित बुद्ध के कुल से संबंध स्थापित करना चाहते थे और उन्होंने अपने विवाह के लिए शाक्यों से एक कन्या की माँग की। शाक्यों को यह प्रस्ताव अपने वंश की मर्यादा के प्रतिकूल लगा, किंतु वे कोशल नरेश से शत्रुता मोल लेना नहीं चाहते थे। अंततः शाक्यों ने नागमुंडा नामक दासी की पुत्री वासभखत्तिया को सम्राट की सेवा में राजकुमारी बना कर भेज दिया, जिससे प्रसेनजित ने विवाह कर लिया। इसी दासीपुत्री वासभखत्तिया से विडूडभ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जो प्रसेनजित के बाद कोशल का राजा हुआ। प्रसेनजित का एक विवाह एक मालाकार की पुत्री मल्लिका से भी हुआ था। कुछ इतिहासकार विडूडभ को मल्लिका का पुत्र मानते हैं, जो उचित नहीं है।

महाकोशल की पुत्री कोशल देवी का विवाह बिंबिसार से होने के कारण मगध और कोशल में मैत्री-संबंध स्थापित हुआ था। किंतु मगध नरेश अजातशत्रु के समय में दोनों राज्यों के संबंध बिगड़ गये और संघर्ष छिड़ गया। देवदत्त के प्रभाव में अजातशत्रु ने अपने पिता बिंबिसार की हत्या कर दी और उसी शोक में कोशलदेवी महाकोशला की भी मृत्यु हो गई। प्रसेनजित ने अपनी बहन और बहनोई की मृत्यु के लिए अजातशत्रु को उत्तरदायी माना और दहेज में दिया गया काशी का गाँव अजातशत्रु से वापस ले लिया। अब काशी को लेकर दोनों राज्यों में युद्ध छिड़ गया। इस संघर्ष के संबंध में संयुक्तनिकाय से पता चलता है कि युद्ध में पहले अजातशत्रु की पराजय हुई और वह बंदी बना लिया गया। कहा जाता है कि श्रावस्ती में बंदी जीवन के समय अजातशत्रु को प्रसेनजित की पुत्री वाजिरा से प्रेम हो गया। अंततः प्रसेनजित ने मगध नरेश अजातशत्रु के साथ अपनी पुत्री वाजिरा का विवाह कर दिया और काशी के जिस ग्राम के लिए संघर्ष हो रहा था, उसे पुनः दहेज के रूप में अजातशत्रु को दे दिया।

प्रसेनजित के काल में कोशल का राज्य अपने शक्ति की पराकाष्ठा पर था और कपिलवस्तु के शाक्य, केसपुत्त के कालाम, पावा और कुशीनारा के मल्ल, रामगाम के कोलिय, पिप्पलिवन के मोरिय आदि गणराज्यों पर उसका अधिकार था। संयुक्तनिकाय के अनुसार वह पाँच राजाओं के एक गुट का नेतृत्त्व करता था। वह बुद्ध और उनके धर्म के प्रति श्रद्धालु था तथा बुद्ध उसकी राजधानी में प्रायः भ्रमण किया करते थे। कुछ इतिहासकारों के अनुसार प्रसेनजित अंत तक वैदिक धर्म का अनुयायी बना रहा, किंतु यह उसके व्यक्तिगत जीवन तक ही सीमित रहा। उसने उक्कठ्था, ओपसाद तथा सालवटिका ग्राम को क्रमशः पोक्खरिसादि, चंकि तथा लौहित्य नामक वैदिक ब्राह्मणों को दान दिया था।

प्रसेनजित का अंत दुःखद हुआ। संयुक्तनिकाय से ज्ञात होता है कि एक बार जब प्रसेनजित बुद्ध से मिलने शाक्य प्रदेश गये थे तो विडूडभ ने मंत्री दीर्घचारन के साथ मिलकर अपने पिता की अनुपस्थिति में सत्ता पर अधिकर कर लिया। प्रसेनजित ने भागकर मगध में शरण ली, किंतु राजगृह नगर के निकट पहुँचने पर यात्राजनित कष्ट से उनकी मृत्यु हो गई।

विडूडभ ने कपिलवस्तु के शाक्यों पर आक्रमण किया। बौद्ध साहित्य से पता चलता है कि जब सात वर्ष की अवस्था में विडूडभ शाक्य राज्य में गया था तो वहाँ 'दासी-पुत्र' कहकर उसका अपमान किया गया था। उसी समय उसने शाक्यों के विनाश की प्रतिज्ञा की थी। यही कारण है कि कोशल का नरेश बनते ही विडूडभ ने शाक्यों पर आक्रमण कर दिया और नगर के बच्चों, स्त्रियों और पुरुषों का भीषण नरसंहार किया। बहुत से शाक्यों ने भाग कर अपनी जान बचाई। किंतु विडूडभ जब शाक्यों के संहार के बाद वापस लौट रहा था तो वह अपनी सेना सहित अचिरावती (राप्ती) नदी की बाढ़ में डूब गया। कुछ इतिहासकारों ने इस घटना की प्रमाणिकता को स्वीकार किया है। यह घटना बुद्ध के महापरिनिर्वाण

के कुछ समय पूर्व की है।

विष्णु पुराण में विडूडभ (क्षुद्रक) के बाद क्रमशः कुंडक, सुरथ तथा सुमित्र का नाम मिलता है (ततश्च क्षुद्रकस्ततश्च कुंडकस्तस्मदपि सुरथः। तत्पुत्राश्च सुमित्राः)। कहीं-कहीं कुलक, सुरथ तथा सुमित्र का नाम मिलता है, किंतु इन शासकों के संबंध में अधिक ज्ञान नहीं है। सुमित्र संभवतः इस वंश का अंतिम शासक था। इसके बाद कोशल का स्वतंत्र अस्तित्व समाप्त हो गया और वह मगध राज्य में सम्मिलित कर लिया गया।

वत्स

छठी शताब्दी ई.पू. में वत्स राजतंत्र की गणना प्रमुख जनपदों में होती थी। यह महाजनपद इलाहाबाद तथा बांदा जनपदों में फैला हुआ था। इसकी राजधानी कोशांबी थी। इस समय यहाँ पौरववंशी उदयन शासन कर रहा था। विनयपिटक के अनुसार उसके पिता का नाम परंतप शतानीक तथा पुत्र का नाम बोधिकुमार था। पालि ग्रंथों के आधार पर मललसेकर ने उदयन का जो जीवन-वृत्त निरुपित किया है, उसके अनुसार झंझावत या उतु में उत्पन्न होने के कारण उनका नाम उदयन पड़ा। गुणाढ्य विरचित बृहत्कथा में भी उदयन का जीवन-वृतांत मिलता है। पालि ग्रंथों, कथासरित्सागर के साथ-साथ पुराणों, भास के स्वप्नवासवदत्तम् एवं प्रतिज्ञायौगंधरायण तथा हर्ष की प्रियदर्शिका एवं रत्नावली में भी उदयन से संबंधित आख्यान मिलते हैं। कोशांबी के उत्खनन में उदयन के राजप्रसाद का अवशेष प्राप्त हुआ है जिससे उदयन की ऐतिहासिकता प्रमाणित होती है।

वत्स का पड़ोसी राज्य अवंति था। वत्स और अवंति दोनों ही अपने-अपने राज्य का विस्तार करना चाहते थे, इसलिए इन दोनों के बीच संघर्ष होना स्वाभाविक था। भासकृत स्वप्नवासवदत्तम् से पता चलता है कि अवंतिराज प्रद्योत के अमात्य शालंकायन ने एक बार हाथियों का शिकार करते हुए वत्सराज उदयन को धोखे से बंदी बना लिया। प्रद्योत ने उदयन को अपनी कन्या वासवदत्ता का वीणा-शिक्षक नियुक्त किया और उदयन को वासवदत्ता से प्रेम हो गया। वत्सराज उदयन ने अपने मंत्री यौगंधरायण की सहायता से वासवदत्ता का अपहरण कर लिया और अपनी राजधानी कोशांबी भाग आया। कथासरित्सागर में इस कहानी का विस्तार से वर्णन किया गया है। इसके अनुसार उज्जयिनी नरेश महासेन अपनी सुमुखी कन्या का विवाह उदयन से करना चाहते थे और उदयन भी श्रुति परंपरा से वासवदत्ता के गुण एवं रूप के विषय में जानकर मनसा अनुरक्त हो गये थे। किंतु दोनों राज्यों में शत्रुता के कारण विवाह-संबंध संभव नहीं हो पा रहा था। अंततः प्रद्योत ने उदयन को संदेश प्रेषित किया कि मेरी पुत्री तुमसे वीणावादन सीखना चाहती है, यदि तुम्हें हमारे प्रति स्नेह है तो तुम यहाँ आकर शिक्षा दो। उदयन ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। चंडसेन ने नडागिरि हाथी की भाँति एक कृत्रिम हाथी के द्वारा उदयन को बंदी बनवा लिया। उसने उदयन को अपनी कन्या का शिक्षक नियुक्त किया। इसी शिक्षण-काल में उदयन तथा वासवदत्ता में प्रेम हुआ और दोनों कोशांबी भाग आये। बाद में प्रद्योत ने दोनों के विवाह की अनुमति प्रदान कर दी, जिससे वत्स और अवंति के बीच मैत्री-संबंध स्थापित हो गया।

स्वप्नवासवदत्तम्, बृहत्कथामंजरी एवं कथासरित्सागर से पता चलता है कि वत्सराज उदयन का एक विवाह मगध के राजा दर्शक की बहन पद्मावती से भी हुआ था। इस प्रकार मगध भी उदयन का मित्र-राज्य था। प्रियदर्शिका में उदयन की एक रानी अरण्यका का उल्लेख मिलता है जो अंग नरेश दृढ़वर्मा की पुत्री थी। इसकी एक अन्य रानी मागन्दीया थी, जो कुरु ब्राह्मण की कन्या थी। इससे उदयन को बोधि नामक पुत्र प्राप्त हुआ था। इसके अलावा कोषाध्यक्ष की पुत्री सामावती, कृषककन्या

गोपालमाता, वासवदत्ता की अनुचरी सागरिका भी उदयन की प्रेयसी थीं। अपनी शक्ति एवं प्रतिष्ठा में वृद्धि के लिए उदयन ने इन वैवाहिक संबंधों का आश्रय लिया। यदि वत्सराज उदयन इस प्रकार वैवाहिक संबंध स्थापित न करते, तो संभव है कि अंग, मगध तथा अवंति की बढ़ती शक्ति के समक्ष कोशांबी का अस्तित्व मिट जाता।

सोमदेव के कथासरित्सागर तथा श्रीहर्ष की प्रियदर्शिका से पता चलता है कि उदयन ने कलिंग राज्य की विजय किया था और अपने श्वसुर दृढ़वर्मन् को अंग का शासक नियुक्त किया था। किंतु इन विवरणों की सत्यता संदिग्ध है। उदयन के साम्राज्य-विस्तार का निर्धारण करना कठिन है, किंतु लगता है कि उसका राज्य गंगा-यमुना के दक्षिण-पश्चिम में अवंति की सीमा तक विस्तृत था। सुस्सुमारगिरि के भग उसकी अधीनता स्वीकार करते थे। जातक ग्रंथों से ज्ञात होता है कि भग्ग राज्य में उसका पुत्र बोधिकुमार निवास करता था।

प्रारंभ में उदयन बौद्ध धर्मानुयायी नहीं था, किंतु प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु पिंडोल ने उसे बौद्ध धर्म में दीक्षित किया था। कोशांबी में इस समय कई मठ और विहार विद्यमान थे जिनमें घोषिताराम विहार सबसे प्रमुख था। इसका निर्माण प्रसिद्ध श्रेष्ठि घोषित ने करवाया था। बौद्ध धर्म का प्रमुख केंद्र होने के साथ-साथ कोशांबी व्यापार-वाणिज्य का भी महत्त्वपूर्ण केंद्र था। कोशांबी के उत्खनन से उदयन के राजप्रासाद और घोषिताराम विहार के अवशेष प्राप्त हुए हैं।

उदयन के पश्चात् वत्स राज्य के इतिहास का अधिक ज्ञान नहीं है। पुराणों से पता चलता है कि उदयन के बाद अहीनर को उत्तराधिकार मिला (तस्माच्चोदयन उदयनादहीनरस्ततश्च दंडपाणिस्ततो निरमित्रः)। कथासरित्सागर तथा बृहत्कथामंजरी में उदयन के उत्तराधिकारी के रूप में नरवाहनदत्त का उल्लेख मिलता है। पालि ग्रंथों में उदयन का उत्तराधिकारी बोधि को बताया गया है जो शांतिपरक जीवन की खोज में सस्सुमारगिरि के कोकनाद नामक महल में एकांतवास के लिए चला गया था। अहीनर के पश्चात् क्रमशः दंडपाणि, निरमित्रा तथा क्षेमक राजा हुए। इसी पुराण में आगे कहा गया है कि क्षेमक के उत्पन्न होने से यह वंश समाप्त हो जाएगा।

लगता है कि इसके बाद वत्स राज्य की स्वतंत्रता का अंत हो गया और इस पर अवंति का अधिकार हो गया क्योंकि जिस समय प्रद्योत का प्रपौत्र अवन्तिसेन उज्जैन पर शासन कर रहा था, उस समय उसका भाई मणिप्रभ कोशांबी पर राज्य कर रहा था।

अवंति

अवंति जनपद पश्चिमी भारत का प्रमुख राजतंत्र था। बुद्ध के समय यहाँ प्रद्योत का शासन था। वह पुलिक का पुत्र था। विष्णु पुराण से ज्ञात होता है कि पुलिक बार्हद्रथ वंश के अंतिम शासक रिपुंजय का अमात्य था। उसने अपने स्वामी को पदच्युत् कर अपने पुत्र को राजा बनाया था। उसके इस कार्य का अनुमोदन समस्त क्षत्रियों ने बिना किसी विरोध के किया और प्रद्योत को अपना राजा स्वीकार कर लिया। महावग्ग जातक में उसे 'चंड प्रद्योत' कहा गया है।

प्रद्योत एक महत्त्वाकांक्षी एवं शक्तिशाली शासक था। पुराणों के अनुसार 'वह पड़ोसी राजाओं को अपने अधीन करेगा तथा अच्छी नीति का नहीं होगा। वह नरोत्तम 23 वर्षों तक राज्य करेगा।' उसके शासनकाल में संपूर्ण मालवा तथा पूरब एवं दक्षिण के कुछ प्रदेश अवंति राज्य के अधीन हो गये। पालि ग्रंथों तथा कथासरित्सागर से ज्ञात होता है कि अवंति नरेश प्रद्योत ने वत्सराज उदयन को बंदी बना लिया था जो बाद में उसकी कन्या को लेकर कोशांबी भाग था। इससे इतना स्पष्ट है कि वासवदत्ता के विवाह

के पूर्व वत्स से अवंति का संबंध अच्छा नहीं था। आर्थिक दृष्टि से भी अवंति समृद्ध और संपन्न था। यहाँ लौह उद्योग विकसित अवस्था में था, जिससे लगता है कि प्रद्योत के पास उत्तम कोटि के लौह अस्त्र-शस्त्र रहे होंगे जिसके द्वारा लंबे समय तक अवंति मगध की साम्राज्यवादी नीति का सफल प्रतिरोध कर सका था। बिंबिसार के समय में मगध और अवंति में मैत्रीपूर्ण संबंध बने रहे क्योंकि जब एक बार प्रद्योत पांडुरोग से ग्रसित थे तो बिंबिसार ने अपने राजवैद्य जीवक को उनके उपचार के लिए भेजा था।

लगता है कि अजातशत्रु के समय अवंति और मगध के संबंध अच्छे नहीं रह गये थे क्योंकि मज्झिमनिकाय से पता चलता है कि प्रद्योत के आक्रमण के भय से मगध नरेश अजातशत्रु ने अपनी राजधानी राजगृह का दुर्गीकरण करवाया था। किंतु दोनों के बीच किसी प्रत्यक्ष संघर्ष की सूचना नहीं मिलती है।

प्रद्योत अपने बौद्ध पुरोहित महाकच्चायन के प्रभाव में आकर बौद्ध धर्म का अनुयायी हो गया जिसके परिणामस्वरूप अवंति बौद्ध धर्म का एक प्रमुख केंद्र बन गया, जहाँ अनेक भिक्षु-भिक्षुणी निवास करते थे।

भास के प्रतिज्ञायौगंधरायण में प्रद्योत के पालक तथा गोपाल नामक दो पुत्रों का उल्लेख मिलता है। कथासरित्सागर के अनुसार गोपाल ने अपने भाई पालक के लिए राज्य त्याग दिया था। किंतु गोपाल के पुत्र आर्यक ने पुनः अपने वितृव्य (पालक) से सत्ता छीन ली थी। पुराणों में प्रद्योत के बाद पालक तथा आर्यक का ही नाम मिलता है। परिशिष्टपर्वन् से ज्ञात होता है कि पालक ने वत्स राज्य पर आक्रमण कर उसकी राजधानी कोशांबी पर अधिकार कर लिया था। संभवतः पालक ने अपने पुत्र विशाखयूप को कोशांबी का उपराजा नियुक्त किया था। पालक ने 24 वर्षों तक शासन किया। उसके बाद विशाखयूप, अजक तथा नंदिवर्धन राजा हुए, जिन्होंने क्रमशः 50, 21 व 20 वर्षों तक शासन किया।

मगध

बुद्धकालीन राजतंत्रों में मगध सर्वाधिक शक्तिशाली और भाग्यशाली सिद्ध हुआ। मगध प्राकृतिक संसाधनों से संपन्न तथा भौगोलिक दृष्टि से अधिक सुरक्षित था। मगध के प्रतिभाशाली शासकों की साम्राज्यवादी नीतियों के कारण इस महाजनपद का सर्वाधिक विस्तार हुआ और अंततः मगध का इतिहास संपूर्ण भारत का इतिहास बन गया। ऐतिहासिक काल में मगध की स्वतंत्रता का संस्थापक बिंबिसार था जो गौतम बुद्ध का संरक्षक और मित्र था। बिंबिसार ने अपनी दूरदर्शिता और सूझ-बूझ के बल पर मगध राज्य का विस्तार किया। पहले उसने वैवाहिक संबंधों का जाल बिछाकर समकालीन प्रमुख राजवंशों के साथ मैत्री-संबंध स्थापित किया और फिर सैनिक शक्ति के बल पर अंग जैसे राज्यों को मगध साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया।

जीवन के अंतिम समय में बिंबिसार को अपने पुत्र की महत्त्वाकांक्षा का शिकार होना पड़ा। उसका पुत्र कुणिक अजातशत्रु शासक बनने की अपनी महत्त्वाकांक्षा को रोक नहीं सका और पिता बिंबिसार को कारागार में डालकर मार दिया। घोर साम्राज्यवादी अजातशत्रु ने मल्लों के संघ की विजय की और वज्जियों को भी मगध साम्राज्य का अंग बना लिया।

अजातशत्रु की मृत्यु के बाद उसके पुत्र उदायिन् ने सत्ता संभाली और मगध की राजधानी राजगृह से पाटलिपुत्र (पटना) स्थानांतरित की। यद्यपि लिच्छवियों से लड़ते समय अजातशत्रु ने ही पाटलिपुत्र में एक दुर्ग का निर्माण करवाया था, किंतु राजधानी के रूप में इसका उपयोग उदायिन् ने ही किया। उदायिन् तथा उसके उत्तराधिकारी प्रशासन तथा राजकाज में निर्बल थे जिसके कारण शिशुनाग वंश का उदय हुआ। बाद में नंदों ने अपनी योग्यता और दूरदर्शिता के बल पर मगध की श्रेष्ठता को और ऊँचाई प्रदान किया।